कसेलर इटावा ने समाचार पत्रों से उद्धृत कर छपाई है पढ़ी गई उसे सुन कर कुछ वादानुवाद के उपरान्त विदेशी खांड़ त्यागने की सब ने दृढ प्रतिज्ञा की पुजारी जी! तथा सब हलवाई और उपस्थित सज्जनों ने हस्ताक्षर किये ॥

मैं उन महात्माओं को धन्यवाद देता हूं जिन्हों ने अपनी वक्तृता से उन लोगों का हृदय पवित्र किया जो कि कुछ रोज से अपने को दयानन्दानुयायी समझा करते थे उन को कुमार्ग से बचाने वाले स्वामी आलाराम सागर जी ने ता० २० से २३ तक धूमधाम के लकचर से जीन्दवासियों को पवित्र किया ॥

पं० रामप्रसाद श० अध्यापक जीन्द सनातनधर्म सभा ॥

स्वदेश वस्तु प्रचार

हरदुआगञ्ज जिला अलीगढ़-इस कस्बे में दाने की खांड गलने का प्रचार बिलकुल न था लेकिन होली के ऊपर दो तीन हलवाइयों ने दाने की खांड की बिक्री बेचनी शुरू की-जब यह बात विदित हो पंचायत में पेश हुई तब पंचायत का रुख देखकर उन्हों ने दाने की खांड न गलाने को इक़रार किया-और हलवाइयों ने दस्तख़त कर दिये कि आइन्दा कोई इस खांड को न गलावेगा। यदि कोई आदमी किसी की दूकान पर दाने की खांड पकड़े सो फौरन बतावे। बताने वाले को ५) इनाम बेंचने वाले पर ५०) रु० जुर्माना बिरादरी से बाहर। तयार माल सब का इकट्ठा कर लिया-और अलीगढ़ बिक आया ॥

मंगलसेन हर्दुआगंज

देरास्माईलखान में मार्च-३-४-५-को आर्यसमाज का उत्सव हुआ जिस में ३ पण्डित आए और एक मास्टर दुर्गाप्रसाद लवपुरीय भी आये थे २ दिन धर्म चर्चा का वक्त रक्खा हुआ था धर्मचर्चा में प्रथम लाला खानचन्द ने प्रश्न किया जिस के उत्तर मास्टर दुर्गाप्रसाद ऊटपटाङ्ग देते रहे जिस में आर्यसमाज को लज्जित हो कर उसे बन्द करना पड़ा, फिर पं० मदनेश्वर शर्म्मा अध्यापक चर्चमिशनस्कूल के उन्हों ने कहा कि शोक है कि विषय पूरा न होने पर समाप्त किया जाता है। उन्हें कहा गया कि आप प्रश्न करो फिर पण्डित जी के प्रश्न को सुन कर पण्डित आर्यसमाज के उत्तर देने लगे उत्तर ठीक नहीं बना लोगों ने कोलाहल मचाया तीनों पण्डित पारी२ से उत्तर देते थे, आध घंटे तक प्रश्नोत्तर हुआ, आर्यसमाजी बड़े लज्जित हुए, शास्त्रार्थ बद कर कहा गया कि कल नियत समय पर शास्त्रार्थ होगा, दूसरे दिन अपनी कमजोरी छिपाने के कारण नियत समय को परिवर्त्तन कर दिया,। जब पण्डित जी नियत समय पर पहुंचे तो उन्हों ने कहा समय रात्रि परिवर्त्तन कर दिया गया अब कुछ नहीं होसकता,

ह० पं० शिवाराम द्वितीयाध्यापक, देरास्माईलखां

शोक ! शोक !! शोक !!!

हमारे पाठकों ने सुना होगा कि श्रीमान् रामनिश्र शास्त्री जी बनारस निवासी ता० ७ मई को इस असार संसार को छोड़कर स्वर्ग को पधार गये। हमने उक्त शास्त्री जी का ब्रा० स० में यथावसर कई बार नाम तथा प्रशंसा लिखी है जो पाठकों के ध्यान में होगी। यद्यपि संसार में अब भी अनेक बड़े २ पण्डित विद्यमान हैं परन्तु संस्कृत विद्या के धुरन्धर पण्डितों में ऐसे बहुत कम हैं जिनका विचार देशकालानुसार भारतवर्ष की चातुर्वर्ण्य प्रजा को सुधारने के लिये लेख करने का हो और अपने निष्पक्ष विचार जो प्रकट करने के लिये निर्भयता के साथ कलम उठावें। आज कल इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि वेदादि शास्त्रों के अटल तथा गूढ़ सिद्धान्तों को अंगरेजी फारसी आदि भाषाओं के संस्कारों से रंगी हुई बुद्धि वाले मनुष्यों को समयानुसार रीति से समझाया जावे। उक्त शास्त्री जी में लेखन शक्ति बहुत अच्छी थी। पूर्वकाल में एक "मन्त्र मीमांसा" नामक पुस्तक रामनिश्र शास्त्री जी ने लिखी छपाई थी जिसमें अपने वैष्णव सम्प्रदायी होने पर भी वैष्णवों का कुछ भी लिहाज न करके निष्पक्षता के साथ वेद मन्त्रों की सर्वोपरि प्रतिष्ठा लिखी थी। अर्थात् वेद मतानुयायी शुद्ध निर्दोष सनातन धर्म में जो २ झगड़े सम्प्रदायी लोगों के कारण वा अज्ञानियों के अज्ञान से उपस्थित हो गये वा होते हैं उनके संशोधन की बड़ी आवश्यकता है। ऐसे झगड़ों पर उक्त शास्त्रीजी वेदानुकूल निष्पक्ष व्यवस्था लिखने को सदा कटिबद्ध रहते थे। इसी कारण आशा थी कि शास्त्री के जीवन भर में औरभी अच्छे २ धर्मोद्धार के लेख शास्त्री जी के शुद्धानुभव से निकलेंगे जिन से वैदिक सनातनधर्म का संशोधन होगा। हम लोगों की वह आशा आज नष्ट हुई। पाठकगण! हमारे लिये यह दुःख वा शोक थोड़ा नहीं है। अब हमारी दृष्टि बनारस की ओर फिर भी लगी हुई है कि देखें श्रीमान् रामनिश्र शास्त्री जी के कामों का चार्ज बनारस में कौन पं० महाशय लेते हैं। आशा है कि कोई न कोई पं० वैसे काम करने को अवश्य कटिबद्ध होंगे। यह विचार तो हम ने प्रचरित लोकरीत्यनुसार लिखा है। अब शोक के समय में शास्त्रानुकूल हम को जो विचार करना चाहिये उस को थोड़ा सा यहां दिखाते हैं—क्या पाठक महाशयो! आप में से कोई भी कह सकता है कि—उक्त शास्त्री जी को कुछ भी अपनी महायात्रा की खबर मिली हो कि अब हमारे चलने का समय निकट आया। आओ बड़े कठिन मार्ग में जाने की तयारी करें—

यदासर्वंपरित्यज्य गन्तव्यमवशेनते।

अनर्थेकिंप्रसक्तस्त्वं स्वमर्थंनानुतिष्ठसि ? ॥ १॥
अविश्रान्तमनालम्ब–मपाथेयमदैशिकम् ।
तमःकान्तारमध्वानं कथमेकोगमिष्यसि ? ॥ २॥
नहित्वांप्रस्थितंकश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।
सुकृतंदुष्कृतंचत्वां यास्यन्तमनुयास्यति ॥ ३ ॥
क्षेत्रापणगृहासक्त–मन्यत्रगतमानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादायगच्छति ॥ ४ ॥
इदंकृतमिदंकार्य–मिदमन्यत्कृताकृतम् ।
एवमीहासुखासक्तं मृत्युरादायगच्छति ॥ ५ ॥
धर्मएकोऽनुयात्येनं. यत्रक्वचनगामिनम् ।
ततोऽसारेत्रिलोकेऽस्मिन्धर्मंकुरुतमाचिरम् ॥ ६ ॥
श्वःकार्यमद्यकुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ।
नहिप्रतीक्षतेमृत्युःकृतमस्यनवाकृतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ-जब कि सब स्त्री पुत्र धनादि को छोड़ कर वेवश तुझ को जाना पड़ेगा तब तू अनर्थक विचारों में क्यों लगा है ?। अपने मतलब को क्यों नहीं करता ? । १ । शरीर छोड़ कर जिस मार्ग में तुझे जाना है उस में विश्राम करने का कोई भी पड़ाव वा सराय नहीं है । न पकड़ने को कोई सहारा, न खाने पीने को कोई वस्तु मिलता, न जाने की कोई दिशा नियत है, तब भयङ्कर अन्धकार स्वरूप मार्ग में अकेला कैसे जायगा ? ॥ २॥ तेरे चलते समय पीठ पीछे कोई भी स्त्री पुत्र मित्र नौकरादि नहीं चलेगा किन्तु केवल शुभ अशुभ कर्म जाते हुए तेरे पीछे २ जावेंगे । यह व्यास जी ने अपने पुत्र शुकदेव से कहा है ॥ ३ ॥ खेती, दुकान, नौकरी तथा घर के अन्य कामों में लगे लिपटे अन्य ही विचार करते हुये मनुष्य को (जैसे भेड़िया बच्चे को उठा ले जावे वैसे) मृत्यु पकड़ ले जाता है ॥ ४ ॥ हम यह काम पूरा कर चुके, यह करना है और यह अधकिया पड़ा है इस प्रकार कामों की चेष्टा में सुखपूर्वक आसक्त मनुष्य को झट पट मृत्यु उठा ले जाता है ॥ ५ ॥ एक धर्म ही इस मनुष्य के पीछे मरने पर जहां कहीं कर्मानुसार जावे वहां साथ जाता है। तिस से इस असार त्रिलोक में शीघ्र ही धर्म का विचार करो किन्तु क्षणमात्र भी देर मत करो ॥ ६ ॥ कल करने के काम को आज करो और जिसे दो पहर बाद करना चाहते हो उसे दो पहर से पहिले करो । क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखता कि इस का काम पूरा हुआ वा नहीं ॥ ७ ॥

५) रु० का माल ३) रु० में

गौरी नागरी कोष

जिस की पांच वर्ष से धूम पड़ रही थी अब छप कर तयार हो गया यह कोष वही है जो बड़े२ विद्वानों की मण्डली द्वारा १० वर्ष के परिश्रम से तयार हुआ और ऐसा उत्तम कोष आज तक नहीं बना और न आगे को आशा है यह एक बी० ए० पास मास्टर है ४) में उम्रभर के लिये नौकर होता है रात दिन पास रहेगा जब इस से हिन्दी उर्दू प्राकृत संस्कृत अरबी फारसी आदि शब्दों के मायने पूछोगे पहिले हिन्दी में समझायेगा फिर अंगरेजी में बतलायेगा देव नागरी भंडार के रत्नों में यह कोहनूर हीरा है वकील मुख्तार जमीदार अह-लकार ग्रन्थकार लेखक आदि सब का सहायक है पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट म्यकडानल बहादुर तथा रीवां नरेश एवं टैक्टबुक कमेटी पञ्जाब ने भी इस की क़दर की है ऐसा लायक़ मास्टर [कोष] अब और दूसरा नहीं है ट्रान्सलेशन [तर्जुमा सिन्दी से अंगरेज़ी अंगरेज़ी से हिन्दी] करने वालों के बड़े काम का है अतएव स्कूल के विद्यार्थी हिन्दी और अंगरेज़ी में योग्यता प्राप्त करने के अभिलाषी एवं अध्यापक (मास्टर) इस को खरीदने से न चूकें ॥

सुनते हैं साहब ! एक नई बात ॥

केवल पांच आने मात्र में रासकोप सिस्टम घड़ी देंगे । किन्तु प्रथम पांच आने भेज कर हमारा सार्टीफिकेट हांसिल की जियेगा ।

पांच सौ व्यापार मू० १) रु०

इस की सिर्फ सौ कापियां बाकी हैं जिन्हें मगाना हो झट पट मगालें अन्यथा पछिताना होगा यह किस्सा नहीं है जो एकबार पढ़ कर ताख में रख दो इस में रंग रोगन वार्निश साबुन दियासलाई मीनाकारी अर्क कपूर आदि चीज़ बनाने की रीति लिखी है ऐसा कोई व्यापारी नहीं जिस के काम की बात इस में न मिले ।

दो अदद के खरीदार को एक अदद मुफ़्त में देंगे ।

रबर टाइप का अंगरेजी छापाखाना सब सामान सहित २।) रु० में ।

नाम पता छोड़पत्र विजिटिंग कार्ड कुछ ही छापिये मुहर बनाना भी न पड़ैगी । सब इस के द्वारा अंगरेजी बहुत जल्द सीख जाते हैं ।

पं० सूर्यप्राद शर्मा मैनेजर सारस्वत कम्पनी मेरठ सिटी ।

ब्रा०स०का मूल्यप्राप्तिस्वीकार दिशंबर०५ सेफर्वरी सन्०६ तक

१२७८ श्री बैजनाथ व्यास बरौदा २।)
१३१४ जी० वी० मोदक पंढरपुर २।)
१३१६ बा० मुलकराज–कोटभिटण २।)
४३७ हरनारायण पांड़े इकनौर २)
१३२० बा० कन्हैयालाल बिलग्राम ३।)
१३१८ काशीप्रसादराय कप्तानगंज २।)
३३९ श्री लक्ष्मीनारायण नूह ३॥=)
१३१९ पं० सोहनलाल शास्त्री बन्नू २।)
३५७ पं० ठाकुरदत्त जी मुलतान ३॥=)
९२५शंकराचार्यजगद्गुरुबलसाड़ ६॥=)
८९३ पं० रामनारायण जानसठ १॥)
३८३ बा०भगलराम कम्पोंडर ब्रह्मा २।)
१३२९पं०चन्द्रशेखरजीइस्माईलाबाद३।)
१३२५ महन्त विभूतिपुरी पुष्कर २)
१३२३ पं० हरिद्वारी शर्मा खानपुर ७।)
१३२७ पं० भूदेव मिश्र हरपुर १॥)
१३३० पं० भगवानसहाय जी संभल ७।)
११७६रामदासफ़कीरचन्दहोतीमर० २।)
५०० बंशीधरनारायणदासहरमाड़ा२।)
१२०५ मोहनलालकन्हैयालाल ॥-)
१३३३ राय देवीप्रसाद जी कानपुर ३।)
१३३१ पं० बनवारीदत्त जी चांदपुर २।)
१७० पं० कल्याणदत्त जी कासगंज ३।)
१३३४ लक्ष्मीनिवास शर्मा मझिला २।)
१३२८ बाबू शम्भूनाथ जी ब्रह्मा २।)
७६४ पं० मणिराम शास्त्री कोहाट २।)
८८९ चन्दूलाल संतराम अमृतसर १।-)
११ सेठ माधवप्रसाद जी चूरू ३।)
१०२६ श्रीनिवास वि० कोट नयना १॥)
१३३५ पं० रामप्रतापशर्मा कनखल १॥)

११४४ श्रीनन्दकुमार शास्त्री मुम्बई २।)
१३३६पं० चिरंजीलाल शर्मारबू पुरा १॥)
१३४० ला० ज्ञानचन्द जी अमृतसर २।)
१३३९ डा०जगदीशरामजीजगरावां २।)
१०५३ बाबूलाल ति० कटरा प्रयाग २।)
९४६ पं० ज्यूणराम मालेर कोटला २।)
१३४२ भीखू तिवारी गोरखपुर २।)
१३३२ पं० रामस्वरूप शर्मा अलीगढ़ १॥)
१३४१बच्चूलालशालिकरामउन्नाव २।)
२६८पं०गिरधारीलालहोशियारपुर २।)
७१५ हंसराज अगरवाला ब्यावर २।)
९१० बा० अनिरुद्धप्रसाद सागर २।)
१३२१ बा० मोहनलाल जी शिमला २।)
४२६ ला० लक्ष्मीसहाय मवाना २।)
१३७२पं०जोगराजमुनीमफर्रुखाबाद३।)
१३६८पुरुषोत्तमनारायणफर्रुखाबाद२।)
१३४९ पं० लक्ष्मणप्रसाद फतहगढ़ २।)
१३५२ पं० गौरीशंकर फर्रुखाबाद २।)
१३४५ ला०ललताप्रसादफर्रुखाबाद २।)
१३४६ बा० हरप्रसाद जी फतहगढ़ २।)
१३४७ मक्खनलाल बजरंगलाल
फर्रुखाबाद २।)
१३४८ द्वारकाप्रसाद लक्ष्मीनारायण
फर्रुखाबाद २।)
१३५० बल्देवदास शिवप्रसाद " २।)
१३५१घासीरामकिशुनलालफर्रुखाबाद २।)
१३५३ टीकाराम जीवनलाल
शाहजहांपुर २।)
१३५४ शिवदयालगुरुमुखरायफर्रु० २।)
१३४३ प्रेमवल्लभजोषीचौकोटजस्पुर २।)

REGISTERED NO. A242.
ब्रा०स० सम्बन्धी पत्रादि पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा के पते से भेजिये

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व ॥

THE BRAHMAN SARVASWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशात्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्राह्मिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

भाग ४] मासिकपत्र मासाङ्क [८

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म-यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ वि० ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई०

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१—जो विज्ञापन ब्रा०स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्य मिथ्या होने के उत्तर-दाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे। ग्राहक शोच समझ के व्यवहार करें।

२—ब्रा स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३—एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४—जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्र से पूछ कर ब्रा० स० का क्रोड़पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में, और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१—यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल कागज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है॥

२—इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है॥

३—अगला अंक पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अंक विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर दुवारा अंक =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४—राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा॥

५—ब्रा० स० का द्वितीय अंक पहुंचने से पहिले २) ही लिया जायगा। द्वितीय अं० पहुंचने पर २-) तृतीय अं० पहुंचने पर २=) चौथा अं० पहुंचने पर २≡) पांचवें अं० पर २।) पश्चात् मूल्य न आने पर छठा अं० २।-) का वी०पी० जायगा॥

६—जो ग्राहक किसी कारण अग्रिम मूल्य न देकर वादा करेंगे उन से उसी अंक की अवधि का मूल्य लिया जायगा। जैसे १२वां अंक पहुंचने पर २॥≡)

७—जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा ।)का वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उन को नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

८—मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

९—कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य वदलवावें। अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे॥

१०—जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उनको यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र बिना दाम मिला करेगा।

[81]

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ८

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ॥
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

अ०–विराजते सर्वब्रह्माण्डरूपेणेति विराट्समष्टिरूपः प्राणएवास्ति । देष्ट्री–उपदेशकः सर्वस्य शासनकर्त्ता प्रेरकश्च प्राणएवास्ति । सूर्यरूपश्चन्द्ररूपः प्रजापतिरूपश्च प्राणएवास्ति । एवं देवमनुष्यपशुपक्ष्यादयः सर्वे प्राणिनः सर्वरूपं प्राणमेवोपासते ॥

भा०–यथा च कोऽपि ब्रूयान्मन्येत वा कर्पासस्तूलं कर्पासः सूत्रं कर्पासो नानावस्त्रादिरूपेणावस्थितः । वस्त्रादिरूपं कर्पासमेव सर्वे मनुष्या उपासते। यथा वा मन्येत पार्थिवानि सर्वाणि घटपटधात्वादिवस्तूनि मृत्तिकारूपाण्येव सन्ति (वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।) इति श्रुतेः। एवमेव सर्वप्रकृतिरूपः प्राणो विराडादिरूपेणा-

वस्थितः। तमेव स्वस्वजीवनहेतुममृतादिरूपं प्राणं देवादय उपासतइत्याशयः। तस्मै प्राणाय नम इति पूर्वेणान्वयः॥

भाषार्थ–(प्राणो विराट्) सब ब्रह्माण्ड रूप पुरुषाकार से विराजमान प्राण ही है (प्राणो देष्ट्री) सब का शासन कर्त्ता सबका प्रेरक प्राण ही है (प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः) प्राण ही सूर्य और चन्द्रमा रूप है तथा (प्राणमाहुः प्रजापतिम्) प्राण को ही प्रजापति भी कहते हैं। इस प्रकार देव, मनुष्य, पशु और पक्षी आदि सब प्राणी सर्व रूप प्राण की ही उपासना करते हैं॥

भा०:–जैसे कोई कहे वा माने कि कपास ही रुई रूप कपास ही सूत के रूप में और कपास ही नाना प्रकार के वस्त्रादि रूप में विद्यमान हो रहा है। अथवा विनौला ही कपास, रुई, सूत और वस्त्रादि अनेक रूप बना है। अथवा जैसे कोई माने कि घट, पट, सुवर्ण, चांदी, तांबा, कांसा, पीतल, लोहा धातु आदि पार्थिव पदार्थ सब मट्टी रूप ही हैं क्योंकि ये सब मट्टी से बनते हैं और इन सब में मट्टी है। जैसा कि श्रुति में लिखा है कि "विकार, असली से भिन्न कुछ वस्तु नहीं है किन्तु वाणी से कहने मात्र के के लिये नाम ही मात्र है केवल मट्टी ही सत्य है" अर्थात् जैसे जल से भिन्न जल तरङ्ग कुछ वस्तु नहीं हैं वैसे ही घट पटादि पदार्थ मिट्टी से भिन्न कुछ नहीं हैं। इसी के अनुसार सब संसार का कारण रूप प्राण विराट् आदि रूप से अवस्थित है। उसी अपने २ जीवन के हेतु अमृतादि रूप प्राण की देवता आदि उपासना (सेवन) करते हैं। यह मन्त्र का आशय है। उसी प्राणेश्वर के लिये हम नमस्कार प्रणाम करते हैं यह पूर्व मन्त्रों के साथ अन्वयजानो॥

ब्रा० स० अं० ७ पृ० ३०४ से आगे स्मार्त्तधर्ममीमांसा—

त्वमग्निर्वरुणोवायुस्त्वमिन्द्रस्त्वंनिशाकरः॥ १॥
त्वमन्नस्त्वंयमस्त्वंपृथिवी त्वंविश्वंत्वमथाच्युतः।
स्वार्थेस्वाभाविकेऽर्थेच बहुधासंस्थितिस्त्वयि॥ २॥
विश्वेश्वर! नमस्तुभ्यं विश्वात्माविश्वकर्मकृत्।
विश्वभुगविश्वमायुस्त्वं विश्वक्रीडारतिप्रभुः॥ ३॥
नमःशान्तात्मनेतुभ्यं नमोगुह्यतमायच।
अचिन्त्यायाप्रमेयाय अनादिनिधनायच॥ ४॥

अथ यो ह खलु वावास्य तामसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं रुद्रोऽथ यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं ब्रह्माऽथ यो ह खलु वावास्य सात्त्विकोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं विष्णुः सवा एष एकस्त्रिधाभूतोऽष्टधैकादशधा द्वादशधाऽपरिमितधा वोद्भूत उद्भूतत्वाद्भूतं भूतेषु चरति प्रविष्टः स भूतानामधिपतिर्बभूव ३ इत्यसा आत्माऽन्तर्बहिश्चान्तर्बहिश्च ॥ २ ॥

भाषार्थः-पूर्वोक्त उपदेश के अनन्तर जिज्ञासु शिष्य, गुरु से पूछता है कि अब अगले प्रश्न का उत्तर कहिये। प्रश्न-अग्नि, वायु, आदित्य, काल कि जो प्राण रूप है (इसीलिये प्राण का अन्त हो जाने को अन्तकाल [इन्तकाल] कहते हैं) अन्न, ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु इत्यादि देवताओं में से कोई लोग किन्ही का ध्यान उपासना करते और कोई लोग किसी अन्य देवता का ध्यान उपासना करते हैं। इन में जिस देवता का ध्यान उपासना उत्तम कल्याणकारी हो उस को हम से कहिये। (उत्तर) उन को उत्तर देते हैं कि-ये सब अग्नि देवतादि उसी एक ब्रह्म के उत्तम शरीर हैं कि जो ब्रह्म सब से परे, अमर, और शरीर से रहित है उसी की उपासना जिस में जिस का विशेष प्रेम हो उस देवता के द्वारा करे ऐसा करने से मनुष्य जगत् में आनन्द पाता है। [किसी वस्तु वा देव मनुष्यादि में किसी २ का विशेष प्रेम होने का आन्तर्य अदृष्ट सम्बन्ध कारण बनता है। चाहे इस बात को यों कहो कि-पार्थिवांश का पार्थिव वस्तुओं के साथ विशेष सम्बन्ध वा आकर्षण होने से वह अपने ही कारण की ओर जिस प्रकार स्वभाव से ही झुकता है। इसी के अनुसार सभी देवता अंशरूप से व्यापक हैं। तब जिस देवता का अंश जिस मनुष्य में विशेष वा प्रबल है वह मनुष्य उसी देवता के नामरूप को प्रधान मान कर उस एक परमेश्वर की उपासना करे। अन्य देवताओं के अंश भी उस में गौण रूप से हैं इसलिये अङ्गभाव से उन का भी पूजन करे। परन्तु उन सब को एक ही समझे भेदभाव कुछ नहीं रखना चाहिये] यह दृष्टिगोचर होने वाला सभी चराचर संसार ब्रह्मरूप ही है। तब क्या संसार के सब पदार्थों की पूजा उपासना करे? ऐसी शंका किसी को

हो तो उस का उत्तर देते हैं कि जो इस ब्रह्म के मुख्य शरीर ब्रह्मा विष्णु शिवादि हैं उन्ही का ध्यान पूजन उपासना आवाहन विसर्जनादि करे। उन्ही दिव्य शरीरों के साथ ही ऊपर २ के स्वर्गादि लोकों में विचरता है। और सब संचित कर्म्मों का भुगतान हो जाने पर वह पुरुष परमात्मा के साथ एकता को प्राप्त हो जाता है। इसी का नाम मोक्ष है। अब इस एकेश्वर वाद में कौत्सायनी स्तुति दिखायी जाती है—हेपरमात्मन्! सर्वाधार! तुम्ही ब्रह्मा तुम्ही विष्णु तुम रुद्र तुम प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा, अन्न, यम, पृथिवी, विश्व और अच्युतादि नाम रूप से तुम्ही एक स्थित हो कि जैसे एक ही सुवर्ण अनेक आभूषणादि नाम रूप विशेषों में दीखता है। स्वार्थ और स्वाभाविक अर्थ में बहुत प्रकार की स्थिति तुम में दीखती है। इसलिये हेविश्वभर के ईश्वर [मालिक] तुम को नमस्कार है। तुम विश्वरूप तथा सब कर्म करने वाले हो। सब को भोगने वाले, सब की स्थितिरूप और सब क्रीड़ाओं में रमण करने वाले स्वामी तुम ही हो इसलिये शान्तरूप अत्यन्त गुप्त, अचिन्तनीय, अप्रमेय, अनादिस्वरूप तुम्हारे लिये हम वार २ नमस्कार करते हैं॥

अब इस नित्य ब्रह्मचारी परमात्मा का जो तामस अंश है वह रुद्र तथा जो इसका राजस अंश है वह ब्रह्मा और जो इसका सात्त्विक अंश है वह विष्णु कहाता है सो वह एक ही ईश्वर प्रथम तीन प्रकार(ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) का हुआ आठ (वसु) ग्यारह (रुद्र) द्वादश (आदित्य) रूप भी होता है तथा वह अपरिमित असंख्य प्रकार का होता। इसी के अनुसार बृहदारण्योपनिषदादि में भी एक ही देवता को सर्व रूप दिखाया है। इस कारण जब एक ही ईश्वर अनेक नाम रूपों में विद्यमान है तब अनेक नाम रूपों द्वारा एक ही की तो पूजा उपासना हुई। वास्तव में सिद्धान्त यह है कि अनेक नाम रूपों द्वारा जो ईश्वर की उपासना की जाती है वह हम मनुष्यों के भेद भाव के कारण से है। वास्तव में ईश्वर एक है अनेक नहीं हैं। मनुस्मृति में भी लिखा है—

एतमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्येप्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेपरेप्राण मपरेब्रह्मशाश्वतम्॥ १॥
आत्मैवदेवता:सर्वा: सर्वमात्मन्यवस्थितम्।

आत्माहिजनयत्येषां कर्मयोगंशरीरिणाम् ॥ २ ॥

भा०-एक आत्मा ही सब देवता रूप है । सुवर्ण में आभूषणों के वा सूत में कपड़ों के तुल्य उसी एक आत्मा में सब चराचर संसार अवस्थित है वही एक ईश्वर सब मनुष्यादि प्राणियों का कर्म योग प्रगट करता है । इसी एक आत्मा को कोई अग्नि कोई मनु कोई प्रजापति कोई इन्द्र कोई प्राण और कोई सनातन ब्रह्म कहते मानते हैं वास्तव में वह एक ही है अनेक नहीं तथा भगवद्गीता में भी देखिये॥

वेद में जो लिखा है कि (सओतः प्रोतश्च विभूःप्रजासु) इसी वेद मन्त्र का अनुवाद भगवद्गीता में किया है कि-

मयिसर्वमिदंप्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ॥

मुझ परमेश्वर में यह सब चराचर संसार सूत में मूगाओं के तुल्य पोहा हुआ है । तथा वेद में जो लिखा है कि-

पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥
त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ॥

इन्ही मन्त्रो का अनुवाद भगवद्गीता में किया है कि-

विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत् ॥ अ० १० ॥

इस सब जगत् को अपने एक चतुर्थांश से थांभ कर मैं परमेश्वर स्थित हो रहा हूं । सो उपादान कारण की सत्ता ही अपने कार्य का स्तम्भन करने वाली आधार रूप होती है । कि जैसे सूत ही कपड़ों का आधार है वा हड्डी आदि रूप पार्थिवांश ही शरीरादि का आधार है । भगवद्गीता के विभूति प्रकरण में एक ही विष्णुभगवान् के सब रूप दिखाये हैं और विराट् रूप के दिखाने में भी एकात्मवाद को अच्छे प्रकार दिखाया है-

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणःशशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च॥

अर्थः-हे विष्णो वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति और प्रपितामह आदि देवता नाम रूप में आप ही विद्यमान हो । यहां उक्त प्रमाणों में वायु आदि उदाहरण मात्र दिखाये हैं किन्तु परिगणन नहीं किया है । इस से यही सिद्ध हुआ कि एक ही ईश्वर अनेक नाम रूपों में अवस्थित है । तब शोच ली जिये कि जब पञ्चदेवोपासक पुरुष का मृत्यु होगा तब यद्यपि

जिस देवता को उस ने प्रधान माना है उसी के लोक में उस का गमन होगा और विशेष कर वहीं का वासी बनेगा उसी लोक सम्बन्धी दिव्य भोग उस को प्राप्त होंगे। तथापि अन्य देव लोकों में जाने और वहां २ के दिव्य भोग मिलने की रुकावट उस के लिये न होगी किन्तु वह सब देव लोकों में जब २ इच्छा करेगा जासकेगा। और सर्वत्र उस का आदर सत्कार होगा क्योंकि उस ने सब देवों की पूजा उपासना भक्ति के साथ की है। और श्रीवैष्णवादि सम्प्रदायों में जो २ मधुसूदन गोस्वामी आदि लोग एक ही देवता की उपासना का पक्ष लेकर अन्य देवों का सर्वथा ही पूजन नहीं करते अथवा अन्य शिव गणेशादि को देवता ही नहीं मानते तथा अन्य देवों की पूजा से अरुचि वा विरोध रखने वाले हैं वे लोग मृत्यु होने पर एक ही देव लोक के कैदी होजावेंगे। अन्य देव लोकों में निर्भय वे खटक होके नहीं जासकेंगे। क्योंकि एकांश में देव पूजक होने पर भी अन्यांश में वे लोग देव निन्दक ठहरेंगे इस कारण स्वतएव उन लोगों को अन्यत्र जाने में भय लज्जा संकोच होगा। एक ही परमात्मा के प्रधानांशरूप ब्रह्मा विष्णु शिव हैं जैसा पुराण में-

ब्रह्मविष्णुशिवाराजन् प्रधानाब्रह्मशक्तयः॥

अर्थ-हे राजन् ब्रह्मा विष्णु शिव ये तीनों ब्रह्म परमात्मा की प्रधान शक्ति हैं। और यह भी नियम है कि हम जिस हालत में विद्यमान हैं उस से उत्तम हालत में पहुंचने का हम स्वभाव से ही सदा उद्योग किया करते हैं इसी कारण अपने से बहुत उत्तम कोटि के ब्रह्मांश देवतों की पूजा उपासना करना हमारे लिये वेदशास्त्र ने बतलायी है तथा यह भी नियम है कि जैसे का उपासक तैसा ही हो जाता है। चोरों के उपासक भी चोर होजाते सज्जनों के उपासक (सत्संगी) सज्जन होजाते महात्माओं के उपासक (सत्संगी) महात्मा होजाते और जैसे विद्वान् गुरु के उपासक विद्वान् होजाते हैं वैसे ही ईश्वर देवता के उपासक भी ईश्वर देवता होजाते हैं। इस विचार से यह भी शंका दूर होजाती है कि जब एक ही ईश्वर है तब कौन किसकी उपासना करे? तो उत्तर यह है कि एक ही के निकृष्ट २ अंश अपनी निकृष्टता छोड़ने और उत्तमता ग्रहण करने के लिये उत्तम २ देवांशों की उपासना करते हैं और यही अभिप्राय वेदादि शास्त्रों का है। अब हमारे पाठक लोगों की समझ में ठीक

आगया होगा कि एक उपासक पुरुष को पांच देह मिलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। क्योंकि वह उपासक सभी देवलोकों में अपने एक ही दिव्य शरीर से जा सकता है। और देवलोक तथा दिव्य शरीर प्राप्त होने में कैसी २ शक्ति वा योग्यता मनुष्य को प्राप्त हो जाती है यह बात यदि हमारे गोस्वामी को ज्ञात होती तो पांच देह धारण की असम्भवता वे कदापि न दिखाते। देखिये सामवेदीय छान्दोग्योपनि० प्र० ८ खं० २ कं० १०

यंयमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते ॥

भा०:—वह उपासक जिस २ विषय की कामना वाला होता जिस २ वस्तु वा हालत को चाहता है वह २ कामनां संकल्प करने मात्र से उपस्थित हो जाती है उस के लिये उपासक को अन्य कुछ भी उद्योग वा चिन्ता नहीं करने पड़ती। उस २ कामना से सम्पन्न हुआ देवलोक में आदर सत्कार पाता है। जब कि संकल्प मात्र से उसकी सब कामना सिद्ध हो जाती हैं। तब उसके लिये कई शरीर धारण करने की असम्भवता दिखाना गोस्वामी की बड़ी भूल है। क्योंकि मृत्युलोक के से व्यवहार दिव्य सृष्टि में नहीं हैं। क्योंकि दिव्य शरीर प्राप्त होते ही अणिमा महिमादि अष्ट सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं जिस के लिये योग दर्शन के (भवप्रत्ययोविदेहप्रकृतिलयानाम्) इस समाधि पाद के सूत्र और भाष्य में स्पष्ट दिखाया है।

और लौकिक दृष्टान्त से भी यह बात सिद्ध हो जायगी कि जैसे राजशक्ति एक ही अविच्छिन्न अखण्ड वस्तु है उस के टुकड़े नहीं हो सकते तो भी व्यवहार सिद्धि के लिये लाट, कमिश्नर, जज, कलक्टर, जंट, डिपटी, तहसीलदार आदि राजशक्ति के भिन्न २ अंशों को धारण करते हुए उन २ कामों को चलाते हैं। राजभक्ति चाहते हुए प्रजा के पुरुष को गौण प्रधान भाव से लाट आदि सभी की आदर सत्कार रूप उपासना यथावसर करनी उचित होती है। तभी उन २ राज्यांशों से सम्बन्ध रखने वाले संसारी सभी काम उस प्रजास्थ राजा रईस के सिद्ध होते जाते हैं। यदि वह किसी एक का ही आदर सत्कार करे तो उस के काम बने कदापि न हों इसलिये सभी की सेवा कर्त्तव्य होती है वैसे ही ईश्वरशक्ति भी अखण्ड अविच्छिन्न एक ही है। उसी शक्ति के भिन्न २ अंशों को लिये हुए जगत्कार्य निर्वाहार्थ अनेक देवता

ओं के नाम रूप में ईश्वरशक्ति विद्यमान है। उसी एक की अनेक दिव्य नाम रूपों द्वारा पूजा उपासना तथा भक्ति करनी चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक वा पांच देवों की भक्ति उपासना करना मानना अवश्य चाहिये।

अब रहा समान भाव का विचार कि "जब एक देवता में विशेष और चारों में उस की न्यून प्रीति है तब सब को समान मानना न ठहरा इत्यादि" इस गोस्वामी के लेख का समाधान यह है कि हमारे ऊपर के दृष्टान्त सहित वर्णन किये लेख से यह सिद्ध हो गया है कि एक ही शक्ति अनेक व्यक्तियों में अनेक नाम रूप धारण किये हुए अवस्थित है तब वह वेदादि शास्त्रों का मर्म जानता हुआ सच्चा सनातनधर्मी उपासक एक ही ईश्वर की पांच प्रकार की देवव्यक्तियों में अवस्थित जानता मानता हुआ एक ही की पूजा उपासना करता है उस की दृष्टि में अभेद होने से विषमता है ही नहीं तब उस की न्यूनाधिक प्रीति हो भी नहीं सकती यही सिद्धान्त वेदादि शास्त्रों का है।

अब रहा यह कि वेदादि का मर्म जो नहीं जानता और इसी से वह अनेक देवता मान कर न्यूनाधिक प्रीति करता है तो यह मनुष्य का दोष है इस में शास्त्र का कुछ दोष नहीं है। पर ऐसे भेद दृष्टि वाले को भी कई शरीर धारण कर कई लोक में जाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रधान देवता की इच्छानुसार उसको दिव्य शरीर प्राप्त होजाने पर उसी से सब देव लोकों में जा सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि अभेद दृष्टि से अनेक व्यक्तियों में एकेश्वर की पूजा उपासना करना उत्तम कक्षा है तथा भेदोपासना भी स्वर्ग प्राप्ति का साधन अवश्य है और अन्य देवताओं का सर्वथा त्याग करने की अपेक्षा गौण मानकर पूजा करना भी बहुत अच्छा है। क्योंकि जो रईस सब राजकर्मचारियों का यथोचित सम्मान करता है उस पर सभी की कृपा दृष्टि रहती है। इस लिये किसी एक के सेवक की अपेक्षा उसके काम भी बहुत निकलते हैं। वैसे ही अनेक देवताओं की पूजा उपासना भी विशेष कार्य साधक है। आगे गो स्वामी जी लिखते हैं कि "एक पुरुष दो स्त्रियों को समान भाव से नहीं देख सकता है इत्यादि तब एक साधक पांच इष्ट देवताओं को समान भाव से देखता हो आश्चर्य है" पाठक महाशय! ध्यान दीजिये कि स्त्री पुत्र मित्रादि का दृष्टान्त ईश्वर विषय में लिखना कैसा भद्दा है?। दो स्त्रियों में जो अधिक रूपवती वा युवति

तथा प्रियवादिनी होगी उससे काम वश हुआ पुरुष विशेष प्रीति करेगा तो यह पुरुष का दोष हुआ। यदि धर्मशास्त्र की मर्यादानुसार इसी बात को कहा जायगा तब ऐसा कहेंगे कि दो स्त्री और दो आदि पुत्रों पर पुरुष को समान दृष्टि रखनी चाहिये। और न्यायशास्त्र का गोस्वामी को बोध होता तो शोच भी सकते कि दोनों स्त्रियों को एक ही पुरुष अपनी स्त्री मानता है क्योंकि " ये दोनों मेरी पत्नी हैं " ऐसा मानने कहने में कुछ भी अन्तर पत्नीत्व पुत्रत्वादि में नहीं है। क्योंकि उन दोनों में स्त्रीत्व तथा पुत्रत्वादि जो समान धर्म है वह अमिट है इस लिये साम्य भाव को कोई भी मेट ही नहीं सकता। कैसे आश्चर्य की बात है! हमारे गोस्वामी कहते हैं कि " वास्तव में साम्य भाव है भी नहीं " यदि साम्यभाव न होता तो विषमता भी कुछ नहीं हो सकती क्योंकि साम्यभाव का निषेध ही तो विषमता है!। जब समता ही न हो तो निषेध किस का होगा?। (प्राप्तौ सत्यां निषेधप्रवृत्तिः) जिस सनातन धर्म का सिद्धान्त पूर्व से ही चला आता है कि–समदृष्टि होना धर्म का द्वार है। और जिसके लिये श्री भगवद्गीता में बल पूर्वक लिखा गया है कि–

समःसिद्धावसिद्धौच। ईक्षतेयोगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः। आत्मौपम्येनसर्वत्र समंपश्यतियोऽर्जुन! ॥

समोऽहंसर्वभूतेषु नमेद्वेष्योऽस्तिनप्रियः ॥

निर्दोषंहिसमंब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः ॥

शुनिचैवश्वपाकेच पण्डिताःसमदर्शिनः ॥

इत्यादि सैकड़ों प्रमाणों से साम्यभाव की प्रशंसा और आवश्यकता शास्त्रों में दिखायी है तथा–

अयंनिजःपरोवेति गणनालघुचेतसाम् ॥

उदारचरितानांतु वसुधैवकुटुम्बकम् ॥

जब यह कह दिया गया कि समदर्शी ही पण्डित है तो विषम दृष्टि होना मूर्खता सिद्ध हो गयी न?। क्योंकि–

एकएवहिभूतात्मा भूतेभूतेव्यवस्थितः।

एकधाबहुधाचैव दृश्यतेजलचन्द्रवत् ॥

जब एक ही आत्म वस्तु सब प्राणियों को सचेत कर रहा है तब उस में विषमता वा भेद दृष्टि करना अज्ञान क्यों नहीं है ?। इस लिये अनेक स्त्री पुत्रादि को ही नहीं किन्तु प्राणी मात्र में सम दृष्टि करना उचित है ॥

अब रही यह बात कि " एक देव को मुख्य (अंगी) मानकर मध्य में स्थापन कर पूजन करते और चारों को अंग मानकर इधर उधर पूजते हैं " सो इसका उत्तर यह है कि पञ्चायतन देवस्थापन के विचार में किसी देवता को गौण मुख्य मानने का कुछ भी विचार नहीं है किन्तु पञ्चायतन पूजा में पांच देवों को पांच २ प्रकार से स्थापन करना उचित है (१–गणपतिपञ्चक)

हेरम्बन्तुयदामध्ये ऐशान्यामच्युतंयजेत् ।
आग्नेय्यांपञ्चवक्त्रंतु नैर्ऋत्यांद्युमणिंयजेत् ।
वायव्यामम्बिकांचैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः ॥
(२–शिवपञ्चक) यदातुशंकरंमध्ये ऐशान्यांश्रीपतिंयजेत्।
आग्नेय्यांचतथाहंसं नैर्ऋत्यांपार्वतीसुतम् ॥
वायव्यांचतदापूज्या भवानीभक्तवत्सला ।
(३–विष्णुपञ्चक) यदातुमध्येगोविन्दमैशान्यांशंकरंयजेत् ।
आग्नेय्यांगणनाथंच नैर्ऋत्यांतपनंतथा ॥ वायव्यामम्बिकांचैव यजेन्नित्यंसमाहितः ॥ (४—देवीपञ्चक) भवानीतुयदामध्ये ऐशान्यांमाधवंयजेत् ॥ आग्नेय्यांपार्वतीनाथं नैर्ऋत्यांगणनायकम् । प्रद्योतनंतुवायव्यामाचार्यस्तुप्रपूजयेत् ॥ (५–सूर्यपञ्चक) सहस्रांशुर्यदामध्ये ऐशान्यांपार्वतीपतिम् । आग्नेय्यामेकदन्तंच नैर्ऋत्यामच्युतंतथा । वायव्यांपूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकभूमिकाम् ॥

इन ऊपर के श्लोकों में पञ्च देवों की उपासना पूजा के लिये पञ्चायतन स्थापन विचार दिखाया है कि–(१–गणेश पञ्चक) जब गणेशजी को बीच में स्थापित करे तब ईशानकोण में विष्णु, आग्नेयकोण में शिव, नैर्ऋत्यकोण में सूर्यनारायण और वायव्यकोण में अम्बिका को स्थापन कर पूजन करे (२–शिवपञ्चक) जब शंकर भगवान् को बीच में स्थापित करे तब ईशान-

कोण में भगवान् विष्णु को, आग्नेयकोण में सूर्य को, नैर्ऋत्यकोण में गणेशजी को और वायव्यकोण में भक्तवत्सल देवी का स्थापन कर पूजन करे (३-विष्णुपञ्चक) और जब बीच में विष्णुभगवान् का स्थापन करे तब ईशानकोण में शंकर का, आग्नेयकोण में गणपति, नैर्ऋत्यकोण में सूर्य और वायव्यकोण में भगवती देवी का स्थापन कर पूजन करे (४-देवीपञ्चक) जब भवानी को बीच में स्थापित करे तब ईशानकोण में विष्णु, आग्नेयकोण में शिवजी, नैर्ऋत्यकोण में गणेशजी और वायव्यकोण में सूर्यनारायण का स्थापन कर पूजन करे (५-सूर्यपञ्चक) जब सूर्यनारायण को बीच में स्थापन करे तब ईशानकोण में शिवजी, आग्नेयकोण में गणेशजी, नैर्ऋत्यकोण में विष्णुभगवान् और वायुकोण में भोगमोक्ष देनेवाली देवी का स्थापन और पूजन करे।

पांच देवों की इस पञ्चायतन पूजा में यहां छोटा बड़ा मानने का कुछ भी विचार नहीं दिखाया गया केवल उन के स्थापन का विचार लिखा गया है क्योंकि सभी देवता एक ही के नामरूप मात्र भेद होने से सभी साक्षात् ईश्वर हैं वहां छोटे बड़े मानने का कोई प्रसंग नहीं है। इसलिये इस पर अधिक लिखना व्यर्थ है।

आगे-गोस्वामी-एक और भी कौतुक है-जहां व्यवस्था पर झगड़ा होता है वहां यही होता है कि "यह वैष्णवव्यवस्था है," यह "स्मार्त्तव्यवस्था है" यह कहीं नहीं सुना कि, यह शैवव्यवस्था है यह स्मार्त्तव्यवस्था है, यह शाक्त व्यवस्था है, यह स्मार्त्त व्यवस्था है वा यह और व्यवस्था है यह स्मार्त्तव्यवस्था है।

शैव, शक्त, सौर, गाणपत्य किसी से स्मार्त्त धर्म की विप्रतिपत्ति नहीं है, केवल वैष्णव धर्म ही से प्रतियोगिता है। इस से यह सिद्ध है कि, वैष्णवधर्म से विरोध करने ही को 'शाक्तधर्म' ने 'स्मार्त्तधर्म, का भेष बदला है आप लोगों ने देखा होगा कि, स्मार्त्तजन जितना वैष्णवों पर आक्षेप करते हैं उतना शैव शाक्तों पर नहीं इसका भी तो कुछ कारण होगा ? । जब स्मार्त्तधर्म जड़वाद है तो अवश्य चैतन्यवाद से ही झगड़ा रहेगा। वैष्णव धर्म ही चैतन्यवाद है इस से इसी का मुकाबिला है॥

समाधान-इस ऊपर लिखे गोस्वामी के लेख में कुछ तत्त्व नहीं है इस से इस का उत्तर अतिसंक्षेप से दिया जाता है। सच्ची बात तो यह है कि शैव शाक्तादि मत किन्हीं अंशों में निराला ढंग धारण करने पर भी दो बातों

में बहुत आगे नहीं बढ़े। एक तो श्रुति स्मृति को त्याग कर मनमानी रीतियों से सन्ध्या तर्पणादि कर्म नहीं करते किन्तु उन्हीं श्रुति स्मृति प्रतिपादित कर्मों को अच्छा कहते मानते हुए यथासम्भव करते कराते भी हैं। चाहें यों कहो कि श्रुतिस्मृत्युक्त कर्मों का परित्याग शैवादि सम्प्रदायों ने विशेष कर नहीं किया है किन्तु शिवोपासक विद्वानों ने ही वेद संहिता से आठ अध्याय रुद्री छांट कर पृथक् की है और उस के द्वारा भी प्रायः शिवस्तुति शिव पूजा की जाती है । इत्यादि कार्यवाही से सिद्ध है कि शिवोपासक शैव लोग श्रुति स्मृति का निरादर वा उपेक्षा न करके किन्तु उसी के अनुसार शिवोपासना करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। इस कारण श्रुत्यनुकूल स्मार्त्तधर्म के साथ शैवादि का विशेष कर मेल है। दूसरी बात यह है कि शैव-शाक्तादि लोग अन्य विष्णुभगवान् आदि देवों की पूजा भक्ति उपासना से उदासीन तथा विरुद्ध नहीं हैं। विष्णु के मन्दिर में जा कर अवश्यमेव नमस्कार प्रणामादि करेंगे। विष्णुमन्दिरों में जाना बुरा भी नहीं समझते हैं। तब शैवादिकी स्मार्त्तधर्म से विप्रतिपत्ति नाम विरोध कैसे होता ?। क्योंकि मुख्य ये ही दोनों बातें स्मार्त्त और वैष्णवों की विप्रतिपत्ति में मूल कारण हैं। अनेक वैष्णव लोग वाल्मीकीयरामायण तथा श्रीमद्भागवत का स्वाध्याय के स्थान में पाठ करते हैं उन २ इतिहास पुराणों का वेद से भी अधिक २ मान्य करते हैं वेद का नाम भी नहीं लेते इसी कारण वैष्णव विद्वानों ने विष्णुभगवान् की स्तुति के सूक्त वेद से छांट कर कोई स्तोत्र अब तक नियत नहीं किया और शिवालयादि अन्यदेव मन्दिरों में जाना तक बुरा समझते हैं वा अन्य शिव गणेशादि देवों का पूजा पाठ अच्छा भी नहीं मानते अर्थात् अन्य देवों को देवता भी नहीं मानते। यही कारण है कि वैष्णवसम्प्रदायों के साथ स्मार्त्तधर्म का विरोध वा विशेष कर भेदभाव हो गया है। जब कि स्मार्त्त लोगों का मत सोलहो आना यह है कि श्रुतिस्मृति प्रतिपादित विचारों का पूर्णरूप से आदर करना और वैष्णवों का इस से विपरीत है तब इन का मेल कैसे हो ?। वास्तव में सत्य यही है कि वैष्णव लोग अन्य देवों की उपासना से अरुचि रखते हैं और शैवादि की अरुचि विष्णु पूजा में नहीं है इसीलिये इस सभवी झगड़े के मूल कारण वैष्णव लोग सिद्ध हो गये। ऐसी दशा में स्मार्त्त लोगों को दोष देना यह उन की बीसो विश्वे भूल वा पक्षपात है। इस से स्मार्त्त और वैष्णवों की परस्पर प्रतियोगिता का

कारण वैष्णव लोग हो हैं। क्योंकि स्मार्त्त लोग श्रुतिस्मृति के अनुसार विष्णु-भगवान् के अवतारों को तथा पूजा उपासना को भी सम्यक् तया मानते हैं। परन्तु वैष्णव लोग वेदोक्त भी शिवादि देवताओं को नहीं मानते इस से वैष्णव मत एकदेशी है। और स्मार्त्त सर्वदेशी है। शाक्तधर्म ने स्मार्त्तवेष नहीं बदला है यह बात हम पहिले ही सिद्ध कर चुके हैं। तथा स्मार्त्तधर्म जड़वाद भी नहीं किन्तु यथार्थ वेदानुकूल चेतनात्मवाद यही स्मार्त्तधर्म जिस प्रकार है सो भी हम सप्रमाण पहिले इसी स्मार्त्तधर्म मीमांसा लेख में लिख चुके हैं॥

गोस्वामी—एक यह भी कारण है कि शैव, शाक्त और गाणपत्य आदिक धर्म संप्रदाय रूप से प्रचलित हो कर समाज बद्ध नहीं हुए हैं। इसी से इन पर दृष्टि नहीं पड़ी है और वैष्णव धर्म चार सम्प्रदाय एवं उन की शाखा प्रशाखाओं से वर्द्धित हो कर समाज बद्ध हो रहा है इसी से सब की दृष्टि इसी पर पड़ती है और यही सब की आखों में खटकता है। स्मार्त्तधर्म क्या है म्यूनीसिपेलटी है पांचो देवता मेम्बर हैं जो बीच में पूजा जाता है प्रेसीडेन्ट है। स्मार्त्त धर्म के मानने वाले म्यूनीसिपेलटी के नौकर हैं। गवर्नमेंट सरवेंट नहीं है इसी से उन की पेनशन् (मुक्ति) नहीं होती है॥

समाधान—शैव शाक्तादि मतों के ब्राह्मणादि द्विजों ने श्रौत स्मार्त्त वर्णाश्रम धर्म का परित्याग वैष्णवों के समान किया ही नहीं तब उन का स्मार्त्तों से विरुद्ध नया समाज क्यों बंधता ?। और वैष्णव सम्प्रदायों ने श्रुति स्मृति से भिन्न नया २ रंग ढंग तथा नया विचार विशेष रूप से चलाया है नयी बात वा नवीन निराले ढंग पर सभी की दृष्टि विशेष रूप से पड़ती है। इसी लिये कोई २ मांगने वाले भिक्षुक ऐसा विलक्षण रंगबिरंगा रूप बना कर मांगने को निकलते हैं कि जिससे सब की दृष्टि हम पर पड़े। संसारी मनुष्य नवीनता को अधिक २ प्रसन्न करते हैं। इसी कारण नये सम्प्रदायों में बहुधा फंस जाते हैं जब कि अभी हमारे देखते २, २५। ३० वर्ष के भीतर २ आर्य-समाज तथा राधा स्वामी आदि कई नये मत वेद विरुद्ध मन माने चल गये उनमें हजारों लाखों मनुष्य भी समाज बद्ध हो गये तब वैष्णव सम्प्रदाय जो अनुमान दो हजार वर्ष से इधर २ चले हैं कि जब से स्वामी रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य जी, वल्लभाचार्य जी तथा निम्बार्काचार्य जी हुये हैं उनमें यदि बहुत मनुष्यों का समुदाय सम्मिलित हो कर समाज बद्ध हो गया तो आश्चर्य ही क्या है ?। हम यह अवश्य कहते हैं कि वेदोक्त वर्णाश्रम के

भेदवाद को लिये हुए यदि वैष्णवादि मत चलते तो उनकी इतनी उन्नति कदापि न होती। अच्छे वेदानुयायी आस्तिक स्मार्त्तधर्मी लोगों की आंखों में यदि कुछ २ वैष्णवादि सम्प्रदाय खटकते हैं तो इतने ही कि देखो ये हमारे ही भाई ब्राह्मणादि वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म से विरुद्ध नवीन मतवादी हो गये यह अच्छा न हुआ। क्योंकि वेद की रक्षा अब इन से न होगी। और जब यह ध्यान आता है कि विष्णु भगवान् का उपासक हमारे ही सनातन धर्म का एक भाग वैष्णव सम्प्रदाय है जो कैसी प्रबलता से मद्य मांस भक्षणादि दुराचार का कैसा अच्छा परित्याग वा निषेध करता है कि स्वप्न में भी अच्छा नहीं मानता ऐसे विचार से वैष्णव सम्प्रदायस्थों को देखते हैं तब बड़ा आनन्द होता है कि हमारे भाइयों में मद्य मांसादि से अत्यन्त परहेज करने वाले भी हैं। अब रहा म्यूनीसिपेलटी का दृष्टान्त सो यह कोई शास्त्र सम्बन्धी बात नहीं जिस पर हम विशेष विचार करें। पर गोस्वामी ने यह न सोचा कि जब गवर्नमेण्ट सरवेण्ट के बिना म्यूनिसिपेलटी बनती ही नहीं तब दृष्टान्त के अनुसार दार्ष्टान्त रूप देवताओं की म्यूनिसिपेलटी में भी गवर्नमेण्ट सरवेण्ट मानना ही पड़ेगी। यदि गोस्वामी हठ करेंगे तो उन को जिसके ऊपर कोई नहीं वह स्वयं स्वतन्त्र अधिकारी सरवेण्ट सिद्ध हो जायगा तब वही स्वाधिकार से पिंशन तथा मोक्ष फल दे सकता है। इस लिये "मुक्ति नहीं होती है," कहना मिथ्या है। देखो देवताओं की कमेटी वा सभा की गवर्नमेण्ट सरवेण्ट श्रुति स्मृति दोनों में साफ २ लिखी है जो अनादि काल से देवताओं के अन्तिम फैसला करती आयी है—यथा—

प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन्। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीद्यज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्ग्वः सूर्यो वो ज्योतिरिति॥

शतपथ ब्रा० काण्ड २। अ० ४ ब्रा० २ कं० १॥

भाषार्थः—प्रजापति परमात्मा के इजलास में देवता आदि सब अपना २ फैसला कराने को हाजिर हुए उनमें प्रथम देवता लोग सव्य जनेऊ धारण कर दहिना घोंटू भूमि पर टेक कर प्रजापति की कचहरी में बैठ गये। उन से प्रजापति बोले कि—यज्ञ तुम्हारा अन्न—(भोजन) पूर्वाह्न में होगा, अमृत तुम्हारा रस होगा और सूर्य ज्योति तुम्हारे लोक का प्रकाश नियत किया गया है। इसी प्रकार पितर, मनुष्य, पशु, और असुर लोग भी क्रमशः प्रजापति के इजलास में अ-

पना २ फैसला सुनने के लिये हाजिर हुए। जो जो विचार प्रजापति ने देवतादि के लिये पहिले २ नियत किया उसी २ अपने २ नियम पर सब चलते हैं। देवताओं का नम्बर सब से ऊंचा था इस कारण सब से पहिले वे लोग उपस्थित हुए। यह तो श्रुति का प्रमाण हुआ। अब आगे मनुस्मृति का भी प्रमाण देखिये–

श्रोत्रियस्यकदर्यस्य वदान्यस्यचवार्द्धुषेः।
मीमांसित्वोभयंदेवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ १ ॥
तान्प्रजापतिराहैत्य माकृद्ध्वंविषमंसमम्।
श्रद्धापूतंवदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥ २ ॥ अ० ४।२२४।

भावार्थ–कंजूस वेदपाठी और श्रद्धालु सूदखोर इन दोनों में एक २ अच्छा गुण और एक २ बड़ा दोष देख कर देवताओं की सभा में वाद विवाद पूर्वक मीमांसा होकर कसरत राय से यह बात पास हुई कि उक्त दोनों का अन्न बराबर गुण दोष युक्त है। इस फैसला की नकल जब प्रजापति की अदालत में निगरानी के लिये पहुंची तब प्रजापति ने इस उक्त फैसला को मंजूर न करके देवताओं से कहा कि यह तुम्हारा फैसला ठीक नहीं तुम विषम को सम मत करो क्योंकि श्रद्धालु सूद खोर का अन्न श्रद्धा से पवित्र हो गया श्रद्धा ने उसके सूदखोरी के दोष को निवृत्त कर उसके अन्न को पवित्र कर दिया है। परन्तु वेदपाठी का अन्न कंजूसी रूप अश्रद्धा से दूषित हो चुका है उस दोष को कोई मिटाने वाला नहीं इससे वह दूषित और सुपात्र ब्राह्मण को अग्राह्य है। प्रयोजन यह कि देवताओं की अन्तिम अदालत प्रजापति के यहां होना उक्त प्रमाणों से सिद्ध है। इससे देवताओं की गवर्नमेण्ट सरवेण्ट प्रजापति हैं।

गोस्वामी–स्मार्त्त धर्म का एक यह भी श्रुति से विरोध है कि स्मार्त्तधर्म में भस्म धारण करने का बड़ा आग्रह है और श्रुति (वेद) में भस्म को पाप और अशुद्ध लिखा है–

यन्न रात्र्योपसमादधाति तस्यान्नस्य जग्धस्यैष पाप्मा सीदति भस्म, तेनैनमेतद्व्यावर्त्तयति ॥

शतपथ काण्ड ६। अ० ६ ब्रा० ४ कं० २ ॥

अर्थ–जो रात्रि में समिध आधान करता है उसी अन्न का पाप्मा यह

भस्म है इससे इसको वर्जन करता है ! यहां पाप्मा से तात्पर्य मल से है। जैसे भोजन करे अन्न का मल त्याज्य होता है। ऐसे ही अग्नि के भोजन करे समिध का मल यह भस्म है इस से इसे वर्जन करते हैं। यह समझना कि हमने भस्म का अर्थ अपने मत से किया है। वेद की श्रुति में इस भस्म को मल ही लिखा है।

अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसीति । शतप० कां० ७ । अ० १ । ब्रा० १ । कं ११ ।

अग्नि की भस्म है अग्नि का पुरीष है ।

वैष्णवजन श्रीगोपीचन्दन आदि को धारण करते, वेद के अनुसार भस्म को पाप्मा और पुरीष (मल) जान कर वर्जन करते हैं, स्मार्त्तधर्म का उद्देश यही है जो वैष्णव न करें वही करना, बस चट भस्म धारण करना प्रचार कर डाला। वेद में भस्म को पाप और पुरीष लिखा रहो, यहां यह कौन देखता है, इन का तो यह सिद्धान्त है कि तुम जो अच्छा कहते हो वह बुरा है और जो तुम बुरा कहते हो वह अच्छा है यही शास्त्र यही वेद है ॥

समाधान-यद्यपि भस्म धारण के लिये गृह्यसूत्रादि में लेख है पर गोस्वामी का यह लिखना मिथ्या है कि "भस्म धारण का बड़ा आग्रह है" यदि आग्रह होता तो सभी स्मार्त्तलोग नियम से भस्म ही धारण करते। सो यह नियम नहीं इसी से प्रायः लोग चन्दन धारण करते हैं।

गाङ्गातीरसमुद्भूतां मृदंमूर्ध्नाबिभर्त्तियः ।
बिभर्त्तिसोऽर्कस्यतेजस्तमोनाशायकेवलम् ॥ १ ॥
मृद्भस्मचन्दनंप्रोक्तं तोयंचैवचतुर्थकम् ॥
स्नात्वापुण्ड्रंमृदाकुर्यात्प्रक्षाल्यैवतुभस्मना ॥ २ ॥

अर्थः-गङ्गा तीर से ली हुई मट्टी को जो पुरुष सदा शिर में धारण करता है वह जानो अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के तेज को धारण करता है। मट्टी, भस्म चन्दन और जल इन में किसी वस्तु का त्रिपुण्ड्र स्नान करने के बाद मस्तक में धारण करे। यदि शुद्ध मट्टी आदि तीनों में कोई भी उपलब्ध न हो तो केवल जल का ही त्रिपुण्ड्र संकेतमात्र कर लेवे परन्तु शून्य मस्तक [न-मस्ते] न रहे। यह सनातनधर्मी स्मार्त्त लोगों का मत है। किन्तु भस्मधारण का आग्रह नहीं है। अब रहा यह विचार कि भस्म को श्रुति में ऐसा बुरा क्यों लिखा गया ? इस का उत्तर सुनिये-(शेष आगे)

आ०स० भा० ४ अं० ७ पृ० ३१२ से आगे वे०प्र० का खण्डन

यही उपाय वेद का विषय १। उस उपाय का बोध होना वेद का प्रयोजन २। उस बोध को चाहने वाला वेद का अधिकारी ३। उस उपाय के साथ उपकार्य उपकारकभाव सम्बन्ध ४ ये वेद के अनुबन्ध चतुष्टय कहाते हैं। और युक्ति वा लौकिक दृष्टान्त यह है कि जैसे नासिका से केवल सुगन्ध दुर्गन्ध का ही बोध होता है किन्तु रूप नहीं दीखता इसी लिये रूप के बोधार्थ नासिका से भिन्न चक्षु इन्द्रिय पृथक् बनाया गया। यदि नाक से रूप भी दीख पड़ता तो चक्षु इन्द्रिय व्यर्थ हो जाता। इसी के अनुसार जो काम प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणों से सिद्ध हो जाते हैं उन्हीं के लिये वेद प्रमाण भी हो तो उस का पृथक् मानना व्यर्थ है। वेद से जो काम सिद्ध होते हैं वे प्रत्यक्षानुमान से कदापि सिद्ध नहीं हो सकते ऐसा मानने पर ही वेद की सार्थकता है अन्यथा शब्द प्रमाण का मानना ही व्यर्थ है। जब ऐसा है तो वे०प्र० का अं० २ पृ० २४ आदि में प्रत्यक्षादि से सिद्ध धर्माधर्म के लिये वेद को मानना सर्वथा व्यर्थ है ॥

वे०प्र० पृ० २५ में (परेयिवांसम्०) मन्त्र का अर्थ बहुत अशुद्ध किया है विशेष कर (अनुपस्पशानम्) का "देने वाले" अर्थ अशुद्ध है क्योंकि (स्पश-बाधनस्पर्शनयोः) धातु का दान अर्थ किसी प्रकार नहीं हो सकता किन्तु कर्मानुसार मार्ग को नियत करने वाले वा मार्ग बांधने वाले अर्थ ठीक होगा। तथा "(जनानां संगमनम्) प्राणियों को संगत करने वाले" यह अर्थ व्याकरण से सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि संगमन शब्द में कर्त्ता में ल्युट् प्रत्यय नहीं होता किन्तु यहां अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय है कि मनुष्यादि प्राणी मर २ के जिस के समीप में सम्यक् जाते हैं (संगच्छन्ते जना यस्मिन्यद्वा येन प्रेरिता यदाज्ञया वा स्वस्वकर्मफलैः सह जीवाः संगच्छन्ते स जनानां संगमनो यमः। करणाधिकरणयोरिति ल्युट्) अथवा जिस की प्रेरणा वा आज्ञा से अपने २ कर्मफलों के साथ जीव संगत नाम संबद्ध होते हैं इस कारण यमराज का नाम जनों का संगमन वेद में कहा गया है। अब देखिये यह अर्थ जो व्याकरण के प्रमाणानुसार है उस से सनातनधर्मानुसार मानने योग्य यमराज की सिद्धि है और तु०रा० समाजी का अर्थ मन माना वेदविरुद्ध है। इसी प्रकार यम नाम वायु को सूर्य से उत्पन्न हुआ लिखना भी युक्ति प्रमाण से विरुद्ध तथा मिथ्या है। क्योंकि—

आकाशाद्वायुः । इतिश्रुतिः । तथाचस्मृतिरपि मनु०अ०१।७६

आकाशात्तुविकुर्वाणात्सर्वगन्धवहःशुचिः ।

बलवान्जायतेवायुः सवैस्पर्शगुणोमतः ॥१॥

अर्थः—आकाश से वायु उत्पन्न हुआ और होता है । परिणामरूप से विकार को प्राप्त होते हुए आकाश से सब प्रकार के गन्धों को फैलाने वाला पवित्र बलवान् वायु उत्पन्न होता है सो वायु स्पर्श गुण वाला माना गया है । इत्यादि प्रमाणों द्वारा आकाश से वायु का उत्पन्न होना युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध है। और सूर्य से वायु के उत्पन्न होने में कोई भी युक्ति प्रमाण नहीं है। इस से तु०रा० का वैसा लिखना महा अशुद्ध और मिथ्या है । सूर्य-मण्डल तैजस वस्तु है उस से जल का उत्पन्न होना तो युक्ति प्रमाण से सिद्ध होजायगा । पर वायु का नहीं। हमारी राय में तो तु०रा० आदि समाजियों को ऐसे युक्ति प्रमाण विरुद्ध लेखों से लज्जा संकोच होना चाहिये। आगे उन लोगों को अधिकार है ॥

षडिद्यमाऋषयोदेवजा इति ॥ ऋ० १ । १६४ । १५ ॥

इस मन्त्र में उपरामार्थ से ऋतुओं का विशेषण यम शब्द यौगिक है । परन्तु यह मिथ्या है कि ऋतु विभाग का हेतु वायु है क्योंकि सूर्य की द-क्षिणायन उत्तरायण गति के परिवर्त्तन से ऋतु विभाग होता है । इसलिये ऋतुओं के कारण सूर्य हैं । यही बात (षडिद्यमा०) मन्त्र पर सर्व वेदभाष्य कार सायणाचार्य जी ने लिखी है । इसलिये वायु को ऋतुभेद का कारण लिखना तु० रा० का अज्ञान अवश्य है ।

शिशिरवसन्तग्रीष्मा उत्तरायणं तत्र भगवानाप्यायय-तेऽर्कः कटुतिक्तकषायाश्च रसा बलवन्तो भवन्त्युत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमपहीयते । वर्षाशरद्धेमन्ता दक्षिणायनं तत्र भगवानाप्याय्यते सोमो मधुराम्ललवणाश्च रसा बल-वन्तो भवन्ति, उत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमुपचीयते । सुश्रुते सूत्रस्थाने—ऋतुवर्णनम् ॥

अर्थः— शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, ये तीन ऋतु उत्तरायण कहाते इन ऋतुओं में भगवान् सूर्यनारायण का तेज बढ़ता कटु,तिक्त, और कषैला रस

बलवान् होते उत्तरोत्तर आगे २ सब प्राणियों का बल घटता जाता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त तीन ऋतु दक्षिणायन कहाते उन में भगवान् सोम-देवता की शक्ति बढ़ती है, मीठा, खट्टा और लवण रस उत्तरोत्तर बलवान् होते और आगे २ सब प्राणियों का बल बढ़ता है। इस सुश्रुत के प्रमाण से सिद्ध है कि ऋतु विभाग के कारण सूर्य चन्द्रमा हैं। इस कारण तु० रा० का लिखना अशुद्ध और मिथ्या होने से त्याज्य है ॥

पितृयज्ञ का उपोद्घात।

वे० प्र० २७ पृ० से ३२ तक ६ पृष्ठ में पितृयज्ञ सम्बन्धी विषय पर मनमाना युक्ति प्रमाण विरुद्ध लेख लिखा है। जबकि इन समाजियों का मत ही निर्मूल कल्पित है तब ये लोग समूल सप्रमाण लेख करेंगे ही कहां से। परन्तु मनमानी बातों का उत्तर देना व्यर्थ है। इसलिये ६ पृष्ठ के लेख में जो शास्त्र-प्रमाण से कुछ २ लिखा होगा उस का संक्षेप विचार हम यहां दिखावेंगे। (प्रेतेभ्योददाति) इत्यादि श्रौत सूत्र वाक्यों को तु० रा० प्रक्षिप्त बताते हैं पर युक्ति प्रमाण कुछ नहीं है। अब रहा यह कि पिण्डदानादि के लिये किसी वेदमन्त्र का विनियोग नहीं। सो हम पूछते हैं कि क्या यह कहीं का नियम है कि जिस के लिये वेदमन्त्र का विनियोग न हो वह मिथ्या है। यदि ऐसा है तो प्रथम यही बताओ कि—आर्यसमाजी पञ्चमहायज्ञविधि में जो लिखा है कि (वनस्पतिभ्योनमःमुसलोलूखले) गूलर आदि वनस्पति से बने ऊखली और मूसल को नमस्कार करे और उन के पास एक ग्रास रक्खे यह बात स्वा० दयानन्द ने जो लिखी है उस में किसी वेदमन्त्र का विनि-योग नहीं है तथा अन्न की जो आहुति (अग्नये स्वाहा) आदि मन्त्रों से दी जाती हैं जिसे अपनी वेसमझी से आ० समाजी बलिवैश्वदेव कर्म कहते हैं। उस के लिये या तो वेदमन्त्रों का विनियोग दिखाओ अथवा उन सब स्वा० द० के लेखों को अवैदिक वेदविरुद्ध स्वीकार करो। और यदि वेदमन्त्रों का विनियोग न होने पर भी स्वा० द० के वे लेख ठीक हैं तो वैसे ही पिण्डदानादि के लेख भी ठीक मानने पड़ेंगे। यह तो हम भी जानते मानते हैं कि तु० रा० कुछ न कुछ लिखा ही करेंगे। और जो २ स्वभाव से ही नीच वेदविरोधी लोग आ० समाजी बन बैठे हैं वे तु० रा० के मिथ्या लेखों को अपने अनुकूल होने से सत्य भी माना ही करेंगे जिस से तु० रा० का अनित्य धन संग्रह का उद्देश्य भी कुछ २ सफल होता ही रहेगा। तथापि

हमारे लेख उन आ० समाजियों के लिये सार्थक हो रहे हैं और होंगे कि जो ब्राह्मणग्रन्थ और श्रौत सूत्रादि परममान्य आर्ष प्राचीन ग्रन्थों को परमादर की दृष्टि से देखने वाले तथा उन के लिये वाममार्गी आदि निन्दित शब्दों का प्रयोग बुरा समझते हैं। ऐसे अनेक ब्राह्मणादि आ० समाजी वास्तव में सत्य को खोज रहे हैं और हमारे उन लेखों को वे लोग बड़े विचार से देखते सुनते हैं कि जिन में हम युक्ति प्रमाण सहित अपने लेख से तु० रा० के मनमाने वेदविरुद्ध श्राद्धादि सम्बन्धी विचारों को जड़ सहित काट देते हैं। इस का परिणाम थोड़े काल बाद प्रकाशित होगा कि जब अन्य ब्राह्मणादि समाजीमत को वेदविरुद्ध और मिथ्या समझ कर छोड़ देंगे और हमारे लेखों की पुष्टि करेंगे। तथा हमारा लेख उन सनातनधर्मी लोगों के लिये आगे २ विशेष उपकारी होगा कि जिन की वेदानुकूल सत्य सनातन पितृयज्ञादि धर्म कर्म की उत्तमता और पुष्टि होने पर अटल श्रद्धा और अपने पूर्वज ऋषियों में जिन की पूज्य बुद्धि है। ऐसे ही पुरुष वास्तव में आस्तिक पद के अधिकारी हैं।

हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि जब तु० रा० ने यज्ञ विषय में अपने जानकार होने की मिथ्या डींग मारी थी तब हमने खुले मैदान चैलेंज दिया था कि यदि तु० रा० को कुछ भी शक्ति हो तो वे अपने लेख को सभा में आ कर सिद्ध करें। यज्ञविषय में हम जो प्रश्न करें उन का उत्तर यदि तु० रा० दे सकें तो इतने ही पर हम उन की जीत हुई मानलेंगे। उस विषय में तु० रा० चुप्पी साध गये। मौनावलम्बन को ही उत्तम समझा। अस्तु जो हो प्रयोजन यह है कि जिन को यज्ञविषय के कान पूंछ की कुछ भी खबर नहीं वे अज्ञानान्धकारग्रस्त तु० रा० आदि ब्राह्मणग्रन्थ, मीमांसादर्शन और श्रौतसूत्रादि की समालोचना करेंगे उन में से किन्हीं वाक्यों को प्रक्षिप्त कहेंगे। क्या यह थोड़ा आश्चर्य वा थोड़े शोक का अवसर है?॥

हमारे पाठक महाशय यह भी ध्यान रक्खें कि स्वा० दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाशादि में जिन२ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा श्रौत सूत्रादि को मान्य कोटि में लिखा और जिन को अमान्य लिखा है उन दोनों में क्या भेद हुआ? वे पुस्तकें मान्य क्यों हुए? कि जब उन में भी अमान्यों के तुल्य ही वेदविरुद्ध और प्रक्षिप्तांश तुम मानते हो तब किन्हीं को मान्य लिखना क्या महाप्रमाद वा महा मिथ्या नहीं है?। जिन आर्ष प्राचीन ग्रन्थों के भरोसे पर

(कि जिन को स्वा० दयानन्द ने मान्य लिखा था) समाजी लोग वेदार्थ करने का दावा करते थे जिन के भरोसे पर सनातनियों के साथ शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होते थे उन्हीं ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा मुंशी जगन्नाथदास जी मुरादाबादी ने तथा हम ने जब से आ०समाजी मत की पोल खोलना प्रारम्भ की है तभी से उन प्रमाण माने हुए ग्रन्थों को भी ये समाजी लोग त्यागने लगे हैं। और उन को वाममार्गी तथा प्रक्षिप्त वेदविरुद्ध बताने लगे हैं। इन को लज्जा शर्म कुछ नहीं है। "पिण्डपितृयज्ञ" जो प्रत्येक अमावास्या को कर्त्तव्य कहा है उस के लिये शुक्ल यजु० अ० २ के अन्त में ६ कण्डिका और भिन्न २ कृत्य में विनियुक्त ९ वा १० मन्त्र हैं। पिण्डपितृयज्ञ के लिये पकाये ओदन में से प्रथम (अग्नयेकव्य०) इत्यादि दो आहुति देने का विधान है। इस पर ब्राह्मण श्रुति में यह अर्थवाद लिखा है कि-

देवान्वाएष उपावर्त्तते य आहिताग्निर्भवति यो दर्शपूर्णमासाभ्यां यजतेऽथैतत्पितृयज्ञेनेवाचारीत्तदुदेवेभ्यो निन्हुते स देवैः प्रसूतोऽथैतत्पितृभ्यो ददाति तस्मादुद्वास्याग्नौ द्वेआहुती जुहोति देवेभ्यः। श० २।४।२।११॥

भाषार्थः-वह पुरुष देवताओं का निकटवर्त्ती उन के साथ विशेष मेल वा सम्बन्ध रखने वाला एक प्रकार देवता होजाता है कि जो विधिपूर्वक अग्नियों को स्थापित करके दर्शपूर्णमासादि इष्टि और अग्निहोत्र करता है [वही पिण्ड पितृयज्ञ का अधिकारी है] वह पुरुष जब पितृयज्ञ करता है तब अपसव्य दक्षिण को मुख अप्रदक्षिण आवृत्ति आदि काम पितृयज्ञ में करने पड़ते हैं कि जो देव नियम से विरुद्ध हैं इस कारण देवताओं से विरुद्ध करने में उस यजमान को संकुचित होने पड़ता है। इस लिये पितृयज्ञ का अङ्गरूप दो आहुति देवताओं को प्रथम देकर देवतों से आज्ञा मांगता है कि मैं पितृयज्ञ करूं और देवताओं की आज्ञा वा प्रेरणा होने पर पिण्डपितृयज्ञ करता है। इस कारण अग्नि से ओदन को उतार कर देवताओं के लिये अग्नि में दो आहुति देनी चाहिये। यह तो ब्राह्मणश्रुति में दो आहुति का प्रयोजन दिखाया है। अब मनुस्मृति में देखिये। मनु०अ०३।२०३।२०४॥

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यंविशिष्यते।
दैवंहिपितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनंस्मृतम् ॥१॥

तेषामारक्षभूतंतु पूर्वंदैवंनियोजयेत् ।
रक्षांसिहिविलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥२॥

भाषार्थः-ब्राह्मणादि द्विजों (गृहस्थों) के लिये देवकार्य से पितृ कार्य श्राद्धादि बड़ा श्रेष्ठ काम है । पितृयज्ञ से पहिले किया देवकार्य पितृकार्य का बढ़ाने सुरक्षा करने वाला है इस लिये पितृ कर्म के रक्षक दैवकर्म को श्राद्ध से पहिले करे । यदि देवकार्य द्वारा रक्षा न की जावे तो राक्षस लोग पितृ-कर्म की हानि कर देते हैं ॥

पाठक महाशय ! हमने पिण्ड पितृयज्ञ के अङ्ग रूप दो आहुतियों का प्रयोजन शास्त्र प्रमाण से आप को दिखाया । अब तु० रा० आदि आर्य समाजियों से आप लोग स्वयं पूछ सकते हो कि इन दो आहुतियों का प्रयोजन दुर्गन्ध वायु की शुद्धि वा जो कुछ तुम मानते हो उस में क्या प्रमाण है सो बताओ ? । आगे शुक्ल यजुर्वेद अ० २ कं० २९ का शेष भाग-

अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः ॥ तथाच ब्राह्मणम् अथ दक्षिणेनान्वाहार्यपचनं सकृदुल्लिखति तद्वेदिभाजनं सकृदुह्येव पराञ्चः पितरस्तद्धस्मात्सकृदुल्लिखति ॥ शतपथ २ । ४ । २ । १३ । तथा च कल्पसूत्रम्-दक्षिणेनोल्लिखत्य-पहता इति ॥ का० ४ । १ । ८ ॥

भा०:-ब्राह्मण और कल्पसूत्र दोनों का अर्थ यह है कि श्रौताग्नियों का विधि पूर्वक स्थापन करने वाला यजमान दक्षिणाग्नि कुण्ड से दक्षिण में उत्तर से दक्षिण की ओर को 'स्फ्य' से एक रेखा (अपहता०) मन्त्र पढ़कर करे । पितर लोग मरने पर एक ही वार पितृ लोक में जाते हैं उनकी पुन रावृत्ति फिर नहीं होती इस कारण पितरों के लिये दक्षिण को एक ही वार एक रेखा की जाती है । मन्त्र का अक्षरार्थ यह है कि-(वेदषदः, असुरा, रक्षांसि) वेदी में ठहरने वाले असुर और राक्षस (अपहताः) नष्ट हो जावें। अर्थात् मन्त्र पूर्वक रेखाकरण कर्म से वेदि में ठहरे देव पितरों के विरोधी असुर राक्षस नष्ट हो जाते वा भाग जाते हैं । वेदमन्त्र पढ़के किये विधि पूर्वक कर्म में ऐसी अदृष्ट परोक्ष शक्ति है कि जिससे असुर राक्षस भाग जाते हैं । क्योंकि सूक्ष्म अदृष्ट शक्ति ही सूक्ष्म असुर राक्षसों के विघात में समर्थ

हो सकती है । अब हम यहां एक मन्त्र और लिखते हैं जिस से भी पाठकों को पिण्डपितृयज्ञ का बोध होगा ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टान् लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ शुक्ल यजुषि अ० २ । ३० ॥ ब्राह्मणम्-अथ परस्तादुल्मुकं निदधाति । स यदनिधायोल्मुकमथैतत्पितृभ्यो दद्यादसुररक्षसानि हैषामेतद्विमथ्नीरंस्तथो हैतत्पितृणामसुररक्षसानि न विमथ्नते तस्मात्परस्तादुल्मुकं निदधाति ॥ १४ ॥ स निदधाति-येरूपाणि० त्यस्मात् ॥ इत्यग्निर्हि रक्षसामपहन्ता तस्मादेवं निदधाति ॥१५॥ कल्पसू०= उल्मुकं परस्तात्करोति ये रूपाणीति ॥ का० ४ । १ । ९ ॥

भाषार्थः-ब्राह्मण और कल्पसूत्र दोनों का एक ही अर्थ है कि पिण्डपितृयज्ञ करना चाहता हुआ यजमान दक्षिणाग्नि से दक्षिण में खींची रेखा के दक्षिण छोर पर सिलगता हुआ एक अङ्गार (येरूपाणि०) मन्त्र पढ़ के धरे । यह यजमान उक्त रीति से अङ्गार न धर के यदि पितरों को पिण्डदान [आगे लिखे अनुसार] देवेगा तो इन पितरों के इस पिण्डरूप हविष् को असुर राक्षस बिगाड़ देंगे और वैसा करने अर्थात् अङ्गार रख देने से पितरों के हविष् को असुर राक्षस नहीं बिगाड़ सकते । इस कारण रेखा के दक्षिण छोर पर सिलगता हुआ अङ्गार धरा जाता है । अग्नि ही राक्षसों का नाशक है इस लिये अग्नि का नाम वेद में रक्षोहा रक्खा है । इसलिये वह अङ्गार रक्खा जाता है । मन्त्र का अर्थ यह है कि-कव्यवाहन अग्निदेवता वाला यह त्रिष्टुप् मन्त्र है-

अ०-ये पितृणामन्नं स्वधारूपमस्माभिर्भक्षणीयमिति मन्यमाना रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः स्वानि रूपाणि हित्वा पितृरूपाणि बिभ्राणाः स्वयमसुराः सन्तोऽपि स्वधया पित्रन्नेन साकं चरन्ति पितृयज्ञस्थाने गच्छन्त्यागच्छन्ति च । परापुरः पराक्रान्ताः पुरः स्थूलदेहान् निपुरो निकृष्टान् सू-

क्ष्मदेहान् धारयन्ति । अर्थात्स्वमसुरत्वमन्तर्धातुं ये स्थूलसूक्ष्मरूपाणि शरीराणि बिभ्रति । उल्मुकरूपोऽग्निस्तानस्माल्लोकात् पितृयज्ञस्थानात् प्रणुदाति प्रेरयतु दूरीकरोत्वित्यर्थः । तेचाग्नेर्दैवं तेजोऽसहमाना दूरं धावन्ति । यथा दैवेन प्रकाशेनासुरं तमो नश्यत्येवमेव वेदविधिना स्थापितेनाग्नितेजसा सर्वआसुरा भावाः सद्यो नश्यन्ति ॥

भाषा०:–पितरों का स्वधारूप पिण्डान्न हम खावें ऐसा मानते हुए (ये) जो असुर (रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः) अपने असुर रूपों को छिपा कर पितरों के रूपों को धारण करते हुए (असुराः सन्तः) स्वयं असुर होते हुए भी (स्वधयाचरन्ति) पितरों के पिण्डान्न के साथ पितृयज्ञ के स्थान में विचरते हैं (परापुरः) उत्कृष्ट स्थूल देह धारण करने वाले (निपुरः) निकृष्ट सूक्ष्म देहधारी अर्थात् अपने असुरपन को छिपाने के लिये स्थूल सूक्ष्मरूपों को (ये भरन्ति) जो धारण करते हैं (तान्) उन को (अग्निः) अङ्गाररूप अग्नि (अस्माल्लोकात्प्रणुदाति) इस पितृयज्ञ के स्थान से दूर करे ॥

भा०:–वे असुर लोग अग्नि के दैव तेज को न सहते हुए दूर भाग जाते हैं । जैसे सूर्यादि के दैव प्रकाश से आसुरी अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही वेदविधि से स्थापित किये अग्नि के तेज से सब आसुरी भाव शीघ्र नष्ट हो जाते हैं कि जो पितरों के पिण्ड रूप अन्न को दूषित करने वाले हैं ॥

अब पाठक लोग ध्यान दीजिये कि हमने मन्त्र ब्राह्मण, कल्पसूत्र और स्मृति चारो के प्रमाण सहित पिण्डपितृयज्ञ [श्राद्ध] सम्बन्धी दो कण्डिकाओं का जो अर्थ लिखा है उस से सनातनधर्म के अनुसार मृतक श्राद्ध सम्यक् सिद्ध है । स्वा० दयानन्द ने भी अपनी संस्कारविधि में गृह्यसूत्रोक्तविनियोग मान कर ही संस्कारों का विचार लिखा है । जैसे काम में विनियोग किया जाता है वैसा ही अर्थ भी उस २ विनियुक्त मन्त्र में होना आवश्यक है तभी विनियोग की व्यवस्था लग सकती है कि इसी मन्त्र का इस कर्म में विनियोग युक्त है । सो वैसा ही मन्त्रार्थ भी ब्राह्मणानुसार हम ने दिखाया जिस से सनातन श्राद्ध की सिद्धि और आधुनिक कल्पित मत का खण्डन सिद्ध हो जाता है । इस दशा में तु० रा० का ब्राह्मण और कल्प को प्रक्षिप्तादि कहना प्रमाण शून्य होने से मिथ्या है । शेष आगे—

ब्रा०स० अं० ७ पृ० ३२५ से आगे मुन्शी जगन्नाथ दास का लेख- यजुर्वेद भाष्य के लेख और पृष्ठाङ्क ॥

लिखा सुख दुःख का भोगी भी उसने ईश्वर को हा। अविद्या उसकी अब कोई मिटाये जिसका जी चाहै ॥ ४४५ ॥ करैगा शुद्ध गुरु सेवक की गुप्तेन्द्रिय भला कैसे। वृथा प्रतिकूल शतपथ के वह गाये जिसका जी चाहै ॥ ५०० ॥ भला रक्षा कहीं ईश्वर भी चाहै शूर से अपनी । हंसी वेद और ईश्वर की उड़ाये जिसका जी चाहै ॥ ६३५ ॥ नहीं कोई प्रयत्न ऐसा जो तीनों काल में सुख दे। प्रगट यूं अज्ञता अपनी जताये जिसका जी चाहै ॥ ६७५ ॥ लिखा है भाष्य में यजु के हंसी से मैं नहीं कहता । गधे उल्लू भी पाले और बढ़ाये जिसका जी चाहै ॥८६२॥ अध्याय। २४ पृ० ३३२ ॥ लिखा वध नील गायों का प्रकट हिंसा की दी आज्ञा। यजुः के भाष्य से इस को मिटाये जिसका जी चाहै ॥ १३६३ ॥ लिखा है वैश्य को जिसने प्रकट ही ऊंट की सदृश । गुरु अपना उसे कोई बनाये जिसका जी चाहै ॥ १४१२ ॥ भला आम्रादि वृक्षों को जो वज्रादि से काटैगा। वह क्या फल इस से पायेगा बताये जिसका जी चाहै ॥ १६१८ ॥ लिखी है भूप को उपमा जो उसने नीच शूकर की। किसी राजा को अब जा कर सुनाये जिसका जी चाहै ॥ १६८० ॥ लिखा घी दूध बकरे का श्रुति के अर्थ में देखो। समंजस है कि असमंजस बताये जिसका जी चाहै ॥अ० २१ पृ० ७४॥ लिखा है तृप्तिकारक जो फलों को बट के गुरुजी ने। समान आम्रादि की प्रीति से खाये जिसका जी चाहै। अ० २१ पृ० ८९ ॥ अ-जा बैल और मेढ़े से लिखा है भोग का करना । समाधान इसका पबलिक को सुनाये जिसका जी चाहै॥ अ० २१ पृ० ११५॥ जमाई की सदृश उसने जो विद्वानों को माना है । न मानेगा कोई ऐसा मनाये जिसका जी चाहै ॥ अ० २७ पृ० ५३४ ॥ सदृश माता की सुख दाता लिखा है उसने पत्नी को। उचित है याकि अनुचित यह बताये जिसका जी चाहै ॥ अ० २९ पृ० ७०१ ॥ मनाये वृद्धि सर्पों की कहो क्या इस से हित होगा। जगत् को उस की बुद्धि पर हंसाये जिसका जी चाहै ॥ अ० ३० पृ० ७८३ ॥

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ॥

लिखी वेदों की उत्पत्ति अनादि भी उन्हें माना। छुपे यह अज्ञता कैसे छुपाये जिसका जी चाहै ॥ पृ०९ ॥ लिखी गत शेष वर्षों की जो गणना उस

ने सृष्टि के । कमी है वां करोरों की मिटाये जिसका जी चाहे ॥२३। २४ ॥ भला कहीं ऊंट के भी दांत दोनों ओर होते हैं । वृथा प्रत्यक्ष के विपरीत गाये जिसका जी चाहै ॥ १२४ ॥

पञ्चमहायज्ञविधि मुद्रित संवत् १९३४ ॥

हृदय शिर कण्ठ नाभि प्राण इन्द्रिय किसने माने हैं । समझ कर सोच कर कोई वताये जिसका जी चाहै ॥ पृ० ७ ॥ वताया वेद चारों में जो उसने मन्त्र गायत्री । अथर्वण में हमें आ कर दिखाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० २६॥ कोई वेताल स्वर के गीत गाये जिसका जी चाहै । युवा और बाल वृद्धों को हंसाये जिसका जी चाहै ॥

संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ ॥

जो भात और मांस को खाये वह वेटा बहु गुणी पाये । गुरु ये धर्म सिख लाये खिलाये जिसका जी चाहै ॥ पृ०११ ॥ लिखी हैं गर्भधारण में जो निन्दित रात्रि आठ उसने । मनु के लेख से हम को गिनाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० १३ ॥ उदर में पुत्र हो मा के तब उसको वस्त्र पहिना के । हवा जङ्गल में ले जा के खिलाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० ४१ ॥ असंभव और संभव को भी हा जिसने न पहिचाना । वस ऐसी बुद्धि पर आंसू वहाये जिसका जी चाहै ॥ लिखा है अन्नप्राशन में भी उसने मांस खिलवाना । खिलाये वृद्धि अन्नादि की पाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० ४२ ॥ जो उसने प्रार्थना रक्षा की औषधि उत्तरे से की । क्या कम है मूर्त्ति पूजा से वताये जिसका जी चाहै । ॥ पृ० ४७ ॥ लिखे उपवास तीन उसने प्रकट उपनयन कर्त्ता को । * विरुद्ध अपने लिखेके आप गाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० ५६ ॥ न हो घी आचमन भी जो तो मुरदे को नहीं फूंके । उसे जंगल में छोड़ आये सड़ाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० १४१ ॥ मृतक की भस्म और अस्थी को डलवाये वह खेतों में । ये है किस वेद की आज्ञा बताये जिसका जी चाहै पृ० १५० ॥ सभा में आज विद्वानों की आये जिसका जी चाहै । गुरु के लेख को देखै दिखाये जिसका जी चाहै ॥ वृथा उत्तर कोई झूठे बनाये जिसका जी चाहै। छुपे है कब छपा पुस्तक छुपाये जिसका जी चाहै ॥

सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८७५

लिखा है श्राद्ध मुरदों का सविस्तर तीन पृष्ठों पर। लिखे को आप ही

* किसी का उपवास सत्य नहीं है—सत्यार्थ० १८८४ का पृष्ठ ४३३ ॥

अपने मिटाये जिसका जी चाहै पृ० ४२ ॥ ४७ ॥ लिखा है मांस से दो काल करना होम भी उसने। घर अपना ऐसी ख़ुशबू से बसाये जिसका जी चाहै। ॥ पृ० ४५ ॥ लिखा बलदेव की पत्नी जो उसने रोहिणी को हा। ये उस की अज्ञता सब को सुनाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० १०७ ॥ न अशीरा को दो जल तृण लिखा अन्याय यह कैसा। जगत् को हा अनर्थ ऐसा सिखाये जिसका जी चाहै ॥ पृ० १४८ ॥ न थी गन्ध उस में संन्यासी के गुण और कर्म की किंचित्। उसी के लेख से उस को हराये जिसका जी चाहै ॥ पृ०१५८ से १६४तक॥ अहिंसा त्याग भी मुक्ति का कारण उस ने माना है। बस अब मन अपना हिंसा में लगाये जिस का जी चाहै ॥ पृ० १६५ ॥ लिखा वध गाय वृषभादि का जिसने ग्रन्थ में अपने। महर्षि उसको कलियुग में बताये जिसका जी चाहै ॥ पृ० ३०३ ॥

ज़रा जीवनचरित्र उस का मंगाये जिस का जी चाहै। हमारे लेख को उससे मिलाये जिस का जी चाहै ॥

दयानन्द जीवनचरित्र दलपतराय जगरांवी कृतसे ॥

किया गोवध जिन्हों ने और उस का मांस भी खाया। उन्हीं से लेके सीधा फिर वह खाये जिस का जी चाहै ॥ पृ० ३७। ३८ ॥ पकड़ कर जिस ने मुरदे को छुरी से चीर डाला था। उसे इस कर्म की पदवी दिलाये जिस का जी चाहै ॥ पृ० ५७ ॥ उदर में सांड़ के घुस कर वह सोया था भला कैसे। कहां पर मूर्त्ति है ऐसी दिखाये जिस का जी चाहै ॥ पृ०६०॥ जो घेरा रीछ ने वन में भगाया उस को सौंटे से। कहानी ये भी अच्छी है सुनाये जिस का जी चाहै ॥ पृ० ६१ ॥

आर्योद्देश्यरत्नमाला ॥

गुरु ने रत्नमाला में लिखा है आर्य का लक्षण। किसी के कर्म गुण उस से मिलाये जिस का जी चाहै ॥ पृ० ११ ॥ नहीं गुण आर्य के जब तक वृथा है आर्य कहलाना। दरिद्री यूं वृथा धन पति कहाये जिस का जी चाहै ॥ परस्त्री पर पुरुष संगम ही को व्यभिचार माना है। नियोग अब कहिये क्या ठहरा बताये जिस का जी चाहै ॥ पृ० २० ॥ भला श्रीराम कृष्णादि की मूर्त्ति तो वृथा ठहरीं। ये क्या? फिर उस की फोटो को झुकाये जिस का जी चाहै ॥ अशुद्धि सैकड़ों हम ने नये मत की निकाली हैं। छुपाने से नहीं

छुपतीं छुपाये जिस का जी चाहै ॥ सभी के शिष्ट पुरुषों को लिखे जिस ने वचन खोटे। अब उस की सभ्यता मिथ्या जताये जिस का जी चाहै ॥ हमारे आक्षेपों का तो उत्तर ही नहीं कोई। नये गुल झूठ लिख २ कर खिलाये जिस का जी चाहै ॥ करें सब सत्य का निर्णय बिना हठ और दुराग्रह के। जो मेरी भूल हो मुझ को बताये जिस का जी चाहै ॥ लिखा जो कुछ कि ऋषि मुनियों ने है वही धर्म की सीमा। विरुद्ध उन के अनृत कोई बढ़ाये जिस का जी चाहै ॥ नये मत की नई बातें हुईं सब पर प्रकट सारी। वृथा ढोल अब कोई फूट बजाये जिस का जी चाहै॥ सनातनधर्म की रक्षा करेगा ईश्वर निश्चय। जगन्नाथ अपना मन उस से लगाये जिस का जी चाहै ॥

इति ॥

श्री हरिः॥

हमारा सच्चा श्री सनातन धर्म ॥

आज उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को कोटानुकोटि धन्यवाद है कि जो भक्तों के वास्ते हरदम अवतार लेकर अनेक प्रकार की लीलाओं से त्रैलोक्य को मोहित करते दुष्टों का विनाश कर पृथ्वी का भार उतार भक्तों को अनेक प्रकार की व्याधियों से दूर कर गो ब्राह्मण साधू सन्त संन्यासियों को अनेक प्रकार से सुख शान्ति दे धर्म की मर्यादा को पुनः उद्धार करते जो संसार के अगणित प्राणियों को अनेक प्रकार से मुक्ति का मार्ग यानी पुल बांध कर भगवान् सच्चिदानन्द आनन्द कन्द मथुरा मुकुन्द श्री गोविन्द भगवान् अन्तर्धान हो कर अपने साक्षात् स्वरूप में लय हो जाते ऐसे श्री कृष्णचन्द्र भगवान को हमारा वारम्बार नमस्कार हो जिन्हों ने अपनी माया से सारे ब्रह्माण्ड को मोह रक्खा है कि जिस माया का भेद पाने के लिये अनेक ऋषि मुनियों ने सहस्रों लक्षों वर्ष तपस्या कर अनेक प्रकार का यत्न किया लेकिन भगवान् के विषय में और माया के विषय में वास्तविक कुछ कह न सके। अगोचर और अनिर्वचनीय कह कर छोड़ दिया ऐसे भगवान को आज हमारा वारम्बार नमस्कार हो। ऐसे भगवान के विषय में और उसके विषय में आज कल के शिक्षित पुरुष कहते हैं कि भगवान् का और माया का सारा हाल वेद में लिखा हुआ है सो वेद हमारे पास ही है फिर हमसे क्योंकर भगवान् का हाल छिपा हुआ है। इस तरह की अनेक बातें कह कर वेदज्ञानी और

ब्रह्मज्ञानी की डींग मारते हुए कर्म धर्म से भ्रष्ट हो जाते हैं जिसका विशेष हाल विस्तार से फिर लिखेंगे, जो भगवान इस सृष्टि के कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता हैं जिस सृष्टि का रचना पालन संहार रूप प्रवाह अनादि काल से चला आया और अनन्त काल तक रहेगा ऐसे जगत् कारण मूल भगवान को हमारा बारम्बार नमस्कार हो । जिस भगवान की सृष्टि में अनेक प्रकार के असंख्य जीव मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंगादि भरे पड़े हैं कि जिनको देखकर बड़े २ तप धारी पुरुष बड़े २ बलकारी मनुष्य आश्चर्य सागर में डूब जाते हैं जिस सृष्टि की रचना को देख बड़े २ ऋषि मुनि देवताओं से लेकर ब्रह्मापर्यन्त चकाचौंध हो जाते हैं फिर साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या है कि जिस संसार में मनुष्य पशु पक्षी मुख्य तीन भेद होने पर भी अनेक प्रकार के पशु अनेक प्रकार के पक्षी अनेक प्रकार के कीड़े मकोड़े हैं इसी प्रकार अनेक प्रकार के मनुष्य यानी अनेक प्रकार की जाति होना भी संभव है फिर आज कल के शिक्षित गण पशु २ एक जाति और मनुष्य २ एक जाति कहकर अपनी बुद्धि का परिचय देते हैं क्या ही कहना है उनकी बुद्धि को जो प्रत्यक्ष में देखते हुए भी कुछ विचार नहीं करते जिनकी बुद्धि की समालोचना फिर करेंगे ऐसे जगदाधार जगत्पति भगवान की कृपा मय दृष्टि से तथा श्री १०८ स्वामी प्रकाशानन्द जी पुरी की कृपा से यहां पर श्री सनातनधर्म सभास्थापित की ॥ जिसका विशेष हाल वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है यद्यपि सनातन धर्म अनादि काल से है तथापि कलि महाराज के आगमन होने से तथा नवीन शिक्षा का विस्तार फैलने के कारण महद्विद्वानों ने सभा सोसायटी आवश्यकीय समझ श्री सनातन धर्म सभा स्थापन करने का प्रचार किया जिस विषय में अनेक महाशय ऐसा भी कहते हैं कि हमारी सभा समाज होने पर सनातन धर्मी सभा करने लगे हैं सो यह कहना बड़ी भूल है सनातन धर्मियों में पञ्चायत की कार्रवाई बहुत पुरातन से चली आती है जो सभा सोसायटियों से बहुत ही अधिक गुणकारी है सभा के बनिस्बत पंचायत का आदर मान भी बहुत अधिक है कितनी ही जगह कितने ही झगड़ों मुक़द्दमों का फ़ैसला पंचायत से ही किया जाता है अब इस जगह यह भी याद रहै कि हर एक वस्तु का रूपान्तर होना सनातन से चला आता है तब पंचायत का रूप बदल सभा रूप हो गई तो क्या नई बात है । श्री सनातन धर्म सभा का काम रूपान्तर में अनादि काल से चला आता है अब इस

श्री सनातन धर्म के ऊपर कलिराज के प्रवेश होते ही बड़ी २ आपत्तियां आई हैं बौद्धों के वेद विरुद्ध तर्क कुतर्कों रूप वज्राघात से तथा यवनों की बड़ी २ कठिन नंगी तलवारों से सामने करते हुए और भी अनेक आपत्ति भोगते हुए आज ५००० वर्ष हो गये हैं परन्तु ईश्वर की कृपा से श्री सनातन धर्म की कुछ हानि नहीं हुई इतना अवश्य हुआ कि इस भारत वर्ष में अनेक मत मतान्तर हो गये इस विषय में पं० तुलसी राम जी ने अपने वेद प्रकाश में ठीक लिखा है कि सनातन धर्म के ऊपर ५००० वर्ष से अनेक प्रकार की आपत्तियां आने पर भी कुछ क्षति नहीं हुई लेकिन आर्यसमाज की २० ही वर्ष में ऐसा सुन्दर और सुयोग्य समय होने पर भी क्षति हो रही है खैर जो हो इतना अवश्य है. कि सनातन धर्म धीर वीर गम्भीर शान्ति स्वरूप धर्म है कि जिसकी प्रशंसा करने में शत्रू भी मुख नहीं मोड़ता लेकिन अब उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में एक श्रीस्वामी दयानन्द जी ने वेदों के नाम से अपना मत चलाया है इस में हम को अनुमान है कि इस दयानन्दी मत ने संसार भर में किसी भी धर्म को निन्दा किये विना नहीं छोड़ा कुछ २ ईसाई मुसल्मान यहूदियों को खान पान विवाह शादी नियोग स्वयंवर विवाह श्राद्ध मूर्त्ति पूजा तीर्थ यात्रा इत्यादि कई विषयों में अच्छा कहा है परन्तु इन के बदले सनातनधर्म के ऊपर बहुत चोट फेंट की है लेकिन स्वा०द० ने यह नहीं जान पाया कि सनातनधर्म के एक २ अङ्गको प्रधान मान कर ही सनातनधर्म कल्प वृक्ष में से अनेक डाली पत्ते रूप ही सनातनधर्म संबन्धी अनेक मत होगये जिस की संक्षेप से कुछ मीमांसा करते हैं ईश्वर भजन जो सनातनधर्म का एक अङ्ग है उसी को प्रधान मान कर रामसनेहियों ने संसार त्याग दिया लेकिन स्वा०द० ने इन को रांडसनेही कह कर बुरा बताया है परन्तु यह याद रहे कि रामसनेही रांड़सनेही नहीं किन्तु स्वा०द० पूर्ण रांड़सनेही थे यानी स्त्रियों का बहुत ही पक्ष करते थे जहां कहीं धर्म शास्त्रों में पुरुषों के लिये वाक्य होता स्वामी जी उस वाक्य को स्त्री के लिये बता देते थे यहां तक कि धर्म शास्त्रों से और वेदों से स्त्री मात्र को नियोग की आज्ञा बता कर तथा कन्याओं को वेद पढ़ने और यज्ञोपवीत धारण करने स्वयंवर करनी की आज्ञा देकर अनेक प्रकार से स्त्रियों को स्वतन्त्र और स्वाधीन रहने का रूल पास कर दिया और क्या कहैं स्वा०

द० ने यह भी रूल बना कर पास कर दिया कि कन्या लड़के की अच्छी तरह परीक्षा करके गुप्त बातों का भेद अच्छी तरह जान कर फिर विवाह करे विवाह की ही रात्रि को वर वधू एकान्त में जाकर संभोग कर पुत्र की स्थापना करने का रूल पास कर दिया जो सर्वथा वेद शास्त्रों से विरुद्ध है। अब स्वा०द० की इस आज्ञा से यानी विवाह की रात्रि ही में संभोग होने से स्त्री योनि और पुरुष का वीर्यक्षत होजाने से स्वा०द० के मतानुसार विधवाविवाह तो होही नहीं सकता और स्वा०द० सम्मत नियोग का नियम पालने वाला संसार में कोई है ही नहीं तब स्वा०द० कृत विधवाविवाह और नियोग कुत्ते के शृङ्गवत् हुआ। अब विद्वान् विचार कर लेंगे कि रांड़सनेही कौन हुआ अब इस में यह तर्क बाकी है कि रामसनेही मूर्त्ति पूजा इत्यादिक नहीं मानते परन्तु मूर्त्ति पूजादि के कट्टर विरोधी भी नहीं केवल ईश्वर भजन को ही प्रधान माना है। इसी तरह दादूपंथी कबीरपंथी भी ईश्वर को सर्वव्यापक मान कर सब में ईश्वर देखते हैं। वल्लभकुलीगोकलियागुसाईं भी श्रीकृष्णजी की भक्ति में लवलीन रहते हैं। स्वामी नारायणादि मत भी स्त्रियों में अनेक प्रकार के अवगुण बताकर स्त्रियों के फंदेसे दूर रख काम क्रोध लोभ मोहसे बचने का उपाय बता रहे हैं। सारांश यह है कि सनातनधर्म के एक एक अङ्ग को ही प्रधान मान २ कर अनेक शाखारूप मत प्रगट होगये दूसरे अङ्गों के आर्यसमाजियों के सदृश विरोधी नहीं हैं। जो इन आर्यों की चले तो मूर्त्ति तोड़ डालें तीर्थ रद्द कर देवें नियोग स्वयंवर विधवाविवाह प्रचरित करें गुण कर्म से वर्णव्यवस्था मान माता पिता से नाता तोड़ देवें शास्त्र पुराणों को नष्ट कर देवें या अर्थ उलट पलट कर देवें खाने पीने का नाता तोड़ कर सारे संसार को एकाकार कर देवें लेकिन सनातनधर्म के ऊपर परमात्मा की कृपा होने से कलि महाराज की कुछ पेश नहीं जाती। अब यह तर्क और बाकी रहा कि पंचोपासना के भीतर तिलक विषय और सृष्टि की रचना विषय बड़ा मत भेद है सो यह भी तर्क करना वृथा है जिस तरह ब्रिटिस गवर्नमेंट एक होने पर भी पुलिस और रेलवे पुलिस तथा डाकखाने वालों की वरदी में जिस प्रकार भेद है इसी प्रकार ईश्वर एक होने पर भी उपास्य भेद से तिलक अलग २ हैं अथवा जिस तरह से ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में अपने २ आश्रम को पालने के वास्ते दूसरे २ आश्रमों के कर्म को करने का निषेध किया है यानी जैसे ब्रह्मचर्य आश्रम में स्त्री से संभोग करना पाप है गृहस्थाश्रम में

ब्रह्मचर्य धारण करके बैठना पाप है उसी प्रकार अपने २ इष्टदेव में पूर्ण प्रीति रखने के लिये तिलकों में विचार है। अब रहा सृष्टि की रचना का भेद सो ये कल्पकल्पान्तरों की रचना का भेद है इस में किसी प्रकार की शंका करना ही वृथा है यूं तो ब्रह्म और उस की माया अनादि अनन्त अगोचर अनिर्वचनीय और अपार है कि जिस का पार कोई भी नहीं पा सकता व्यास वसिष्ठादिकों ने अपने २ तपोबल से जितना २ भेद पाया उतना २ ही उन महर्षि लोगों ने लिख दिया कि जिन शास्त्र पुराणों को हम अपने सामने देखते हैं जब कि श्रीमद्भागवत वा श्रीमद्भगवद्गीता के ही ऊपर अनेक विद्वानों ने अनेक टिप्पणी की हैं और इन महर्षियों के ग्रन्थों में ही विद्वान लोग चक्कर खाया करते हैं तब उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साक्षात् ज्ञान स्वरूप वेदों के विषय में तथा ईश्वर के विषय में तथा उस की रचना के विषय में विना ईश्वरीय कृपा के किस तरह से साधारण पुरुष भेद पा सकते हैं। जिस २ मनुष्य के पास जितना २ विद्या बुद्धि और धर्म तपोबल है उतना २ ही उस को ज्ञान होना संभव है इस लिये वेदशास्त्र पुराणों के किसी विषय का समाधान न होने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह बात मिथ्या है लेकिन स्वा०द० ने अपनी विद्या और बुद्धि के ही ऊपर धर्म का आधार रक्खा वेदशास्त्रों के महामिथ्या और अनर्गल अर्थ करके लोगों को ऐसा भ्रमा दिया है कि लोग असली धर्म को किसी प्रकार भी नहीं जान सकते तिस में भी तुर्रा यह है कि दयानन्दी लोग अपने गुरू से भी चार कदम आगे पग बढ़ा कर सर्वशास्त्र वर्जित विधवाविवाह का प्रचार करा रहे हैं जो कि वेदविरुद्ध युक्तिविरुद्ध गुरू आज्ञा विरुद्ध सर्व प्रकार से धर्म वाह्य कर्म है इसी लिये विधवाविवाह के विषय में सैकड़ों प्रश्नों की वर्षा हो रही है लेकिन कोई भी समाजी यथावत् जवाब नहीं देता क्योंकि इन दयानन्दियों में अनेक मासिक तथा साप्ताहिक पत्र होने पर भी वेदप्रकाश और आर्यमित्र ही मुख्य दो पत्र हैं वेदप्रकाश के महा मिथ्या लेखों का मुंह तोड़ उत्तर ब्रा०स० देता हुआ समाज की वेदविरुद्ध पोलों को सब के सामने प्रगट कर रहा है दूसरा आर्यमित्र जिस का सम्पादक रुद्रदत्त है जिन्हों ने प्रथम भारतरत्ननामक पत्र पटना से निकालना आरम्भ किया वास्तव में भारतरत्न न होने से यानी यथा नाम तथा गुण न होने से शीघ्र ही अस्त हो गया द्वितीय वार सत्य-

वादी नाम का पत्र हरद्वार से निकालना आरंभ किया लेकिन आर्यों ने सत्य के ग्रहण का प्रण होने से यथा नाम तथा गुण सत्यवादी में न देख कर पत्र का आदर न किया अथवा सत्यवादी में यथा नाम तथा गुण होने पर भी आर्य भाइयों में सत्य का अनादर और असत्य का आदर होने से आदरणीय नहीं हुआ इसी वास्ते पत्र बन्द हो गया। शायद अब पं० रुद्रदत्त ने असत्य की शरण ली हो क्या आश्चर्य है तभी तो आर्य्यमित्र में महामिथ्या और अनर्गल लेख लिखे जाते हैं। इसी वास्ते तो आर्यमित्र की कुछ उन्नति हुई है परन्तु आर्यमित्र की उन्नति सनातनधर्मी पत्रों के ध्यान न देने से ही हुई है अगर सनातनधर्मी पत्र आर्यमित्र की अनर्गल बातों पर ध्यान दे कर कुछ लिखना चाहें तो आर्यमित्र कभी भी सिर न उठा सके लेकिन सनातनधर्म शीलस्वभाव होने करके किसी का दिल दुःखित नहीं करना चाहता। इसीलिये साम दाम दण्ड भेद चार प्रकार से समझना ही सनातनधर्म है। इसी नीति के अनुसार आज हम आर्यमित्र को प्रार्थना पूर्वक कहते हैं कि आप सनातनधर्म के ऊपर कटु लेखों की वर्षा करना त्याग दें अगर आप कटु वचन कहने और सुनने में ही राजी हैं तो आज २० करोड़ हिन्दुओं का दिल दुःखित देख कर हम भी नहीं चूकेंगे इस वास्ते सावधान हो कर लिखिये ॥

(जगन्मोहन वर्म्मा देई पार निवासी लिखित)

(निवेदन चौथा)

सांसारिक सभी कर्म धर्म प्रायः एक उचित वक्ता अर्थ और काम के अन्तर्गत हैं। चौथा मोक्ष है जिस को सांसारिक नहीं कह सकते। यद्यपि कोई २ आचार्य मोक्ष को भी धर्म का अवान्तर भेद मानते हैं अथवा धर्म के अन्तर्गत मानते पर इस की प्रधानता उन्हें भी स्वीकार है और यह मानते हुए कि "यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" धर्म का लक्षण होगा जिस में अन्तिम मोक्ष कहलावेगा। इन के समुदाय को त्रिवर्ग वा चतुर्वर्ग कहते हैं। इन विषयों पर प्राचीन आचार्यों ने पृथक् २ शास्त्र लिखे हैं यथा धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, मोक्षशास्त्र,। वात्स्यायनाचार्य कामसूत्र में लिखते हैं–

"प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिववर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच। तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायम्भुवो धर्माधिकारिकं पृथक्चकार।

बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् । महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्काम सूत्रं प्रोवाच" ।

और यही नहीं किन्तु त्रिवर्ग के सेवन के निमित्त आचार्यों ने काल भी नियत किये हैं । उसी शास्त्र में है कि–

"शतायुव पुरुषो विभज्य कालमन्योन्यानुवद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत । वाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान् । कामं च यौवने । स्थाविरे धर्मं मोक्षं च । अनित्यत्वादायुषोयथोपपादं वा सेवेत" ।

धर्म का उत्तम अंश जिस को मोक्ष भी कहते उस का व्याख्यान वेदान्तादि में मुख्यतः और धर्मशास्त्र में गौण रीति से है । मीमांसाकार ने जो "चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः" को धर्म का लक्षण लिखा वह आभ्युदयिक धर्म का लक्षण है क्योंकि मीमांसा शास्त्र कर्मकाण्ड का प्रतिपादक है जिस की गति स्वर्ग तक है और यही कारण है कि सूत्र में आचार्य ने "अर्थ" शब्द का पाठ किया है । वेद में कहे सब काम जिन के निमित्त विधिवाक्य मिलें वह सब धर्म वा मोक्ष नहीं क्योंकि वेद ही त्रिवर्ग का साधन है । जिन कार्यों में धर्म की प्रधानता है मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने अपने रचित शास्त्रों में प्रतिपादन किया है । ऐसे ही अन्य अर्थ और काम के सम्बन्ध से अन्य आचार्यों ने।

विवाह एक ऐसा कृत्य है कि जिस का सम्बन्ध त्रिवर्ग से है । महर्षि वात्स्यायन जी लिखते हैं—

"सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः सम्बन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृतारतिश्च" ।

और इसी आशय पर मनुस्मृति में कहा है ।

"गुरुणानुमतःस्नात्वा समावृत्तोयथाविधि । उद्वहेत द्विजोभार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने" ॥

यह उत्तम पक्ष हुआ जिस में काम के साथ धर्म प्रधान है । इसके अतिरिक्त

"सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्तादारकर्मणि ।
कामतस्तुप्रवृत्तानामिमाःस्युःक्रमशोवराः ॥
शूद्रैवभार्याशूद्रस्य साचस्वाचविशःस्मृते ।
तेचस्वाचैवराज्ञश्च ताश्चस्वाचाग्रजन्मनः" ॥

और महर्षि वात्स्यायन ने लिखा है कि–

"कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति । तद्विपरीतउत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च । प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु" ।

इस के अतिरिक्त और लिखा है—

"वेश्यासु पुनर्भूषु च न प्रतिषिद्धः सुखार्थत्वात्"

इन में जिन का धर्म के साथ सम्बन्ध है उन में मन्त्र और संस्कार है और जो केवल काम से सम्बन्ध रखने वाले हैं अथवा जो धर्म को धक्का लगाने वाले हैं उन के लिये न धर्मशास्त्र में मन्त्र है और न संस्कार इसीलिये मनुस्मृति में लिखा है कि–

"नोद्वाहिकेषुमन्त्रेषु नियोगःकीर्त्यतेक्वचित्"

और हमने माना कि धर्मशास्त्र में अपत्यार्थ क्षतयोनि विधवा का नियोग लिखा है पर वह भी अर्थ और काम के अन्तर्गत माना जावेगा न कि धर्म इसीलिये तो मनु० में है ॥

"अपत्यलोभाद्‌ या नारी भर्त्तारमतिवर्तते ।
सेहनिन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्चहीयते" ॥

क्योंकि वात्स्यायनाचार्य लिखते हैं कि–

"अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसितचरित्रातस्यां वेश्यामिव गमनमुत्तमवर्णिन्यामपि न धर्मपीड़ां करिष्यति । पुनर्भूरियम्" ।

इस से स्पष्ट है कि पुनर्भू विधवा और वेश्या में बहुत कम अन्तर है । फिर हम नहीं जानते कि क्यों लोग विधवा विवाह का शोर मचाते हैं क्या ऐसे

लोग धर्मोपदेशक कहे जा सकते हैं ? जब कि मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है।

„अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानंविधीयते ।
धर्मंजिज्ञासमानानां प्रमाणंपरमंश्रुतिः” ॥

यदि यह कहा जावे कि पुरुष का पुनर्विवाह क्यों होता है । तो उत्तर यह है कि वह दार कर्म के उद्देश से है क्योंकि शास्त्रों में सपत्नीक को अग्निहोत्र करने का विधान है यदि इस के विरुद्ध हो तो वह भी काम में आ जायगा पर फिर भी भविष्यत् में उन का अग्निहोत्री होना सम्भव है । यही कारण है कि पुरुष का पुनर्विवाह विधवाओं के पुनर्विवाह से काम्य होने पर भी उत्तम है क्योंकि शास्त्र में पुनर्भू के साथ अग्निहोत्र का विधान देखा नहीं जाता । हम नहीं समझते कि स्वामी द० जी का यह कथन क्यों है कि उन पुरुषों का संबन्ध जिन की स्त्री मर गई हो विधवाओं से हुवा करे और कहां तक धर्मानुकूल है ॥

हमने माना कि सम्प्रति भारतवर्ष में बाल विधवाओं की संख्या बढ़ गई है और इनकी गुप्त दुष्टता और व्यभिचार पर किस देश हितैषी का कलेजा नहीं पसीजता और कौन इनकी दशा शोचनीय नहीं कहता है ? । कितने तो यहां तक कहते हैं कि जब पुरुष स्त्री के मरने पर विवाह करने के अधिकारी हैं तो स्त्री भी विधवा होने पर पुनर्विवाह कर सकती है। ऐसा मानने वाले यही नहीं वरन्-

साचेदक्षतयोनिः स्याद्र गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

“ गतप्रत्यागता ” का यह अर्थ कि विधवा जो पति के यहां जाकर पलट आई हो अर्थात् अक्षतयोनि करके अपने सिद्धान्त को धर्मशास्त्र संगत बतलाते हैं पर यह उनकी स्पष्ट भूल है । मानव सूत्र में क्या किसी गृह्यसूत्र में अक्षतयोनि के पुनः संस्कार की विधि देखी नहीं जाती है । मनुस्मृति में ‘ गतप्रत्यागता ’ ‘ शब्द लाने से अभिप्राय यह है ’ “कि जो पति के आज्ञा के विरुद्ध क्रोधादि से घर से निकल गई हो„ क्योंकि वैवाहिक मन्त्रानुकूल प्रतिज्ञा का उल्लंघन कर जाने से “प्रतिज्ञा हानि„ हो गई और जब तक उनमें पुनः नई प्रतिज्ञा न हो वे दम्पति नहीं कहे जा सकते इसी लिये इसका और अक्षतयोनि का पुनः संस्कार कहा है । यदि विचारा जाय तो बाल विधवाओं की वृद्धि का मुख्य कारण बालविवाह है देश हितैषियों और

धर्मोपदेशकों को वाल विवाह का मूलोच्छेदन करके इस वैधव्य दोष का प्रतीकार (इलाज) करना चाहिये और पातिव्रत धर्म का नाश न करना चाहिये यदि यह कहा जावे कि संख्या बढ़ गई है तो क्या ये विधवा अमर हैं, एक दो शताब्दी में स्वयं मर पचैंगी। अतः परोक्ष शुभ को समक्ष रखते हुये अर्थ से काम में धर्म का भावन त्याज्य है।

उपसंहार में आर्यसमाजी और सनातन धर्मी विद्वानों से मेरी यही प्रार्थना है कि आप लोग पक्षपात छोड़ त्रिवर्ग का उपदेश करते हुये यह विचार रक्खें कि आप के मुख से भूल कर भी ऐसे अर्थ और काम का मण्डन न होने पावे जिससे धर्म को धक्का पहुंचे अथवा जिससे धर्म की कुछ न कुछ सहायता न हो क्योंकि (धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः) ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत।
क्षुरस्यधारानिशितादुरत्यया दुर्गंपथस्तत्कवयोवदन्ति॥

ह० जगन्मोहन वर्म्मा–

स्वामी छुट्टनलाल का ज्योतिष में टांग अड़ाना॥

वेदप्रकाश वर्ष १० मा० ३ पृष्ठ ५८ में स्वा० छुट्टनलाल जी का लेख हमारे ज्योतिष सम्बन्धी ब्रा०स० वाले लेख के उत्तर में छपा है। पाठक महाशय ये लोग ज्योतिष न जानने पर भी व्यर्थ अपना विद्वानों में हास्य कराने के लिये ज्योतिष के विषय में लेखनी उठाते हैं वास्तव में शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष का भी इन को ज्ञान अभी तक नहीं है।

आप फरमाते हैं "वे०प्र० में हमारा (छु०ला०) का लेख है तु०रा० को बताना या तो नेत्रों का दोष है या बुद्धि का इत्यादि" स्वामी जी नेत्रों का दोष तो आप ही के कुटुम्ब को मुबारिक हो, दोष है आप के नाम न लिखने का, वेदप्रकाश में प्रेरित तथा सम्पादकीय लेखों का पता नहीं लगता कई २ वार गड़बड़ होचुकी है। खैर फिर भी कोई बड़ी हानि नहीं आपभी तो उन्हीं के भ्राता हैं आपके लेखको तु०रा० का लिख दिया हो तो क्षमा कीजिये।

"वैशाखस्याद्यपक्षके" में आद्य पक्ष का अर्थ कृष्णपक्ष का करना आप को विद्याभूषण की उपाधि देने की शिफारिस करता है। अमरकोश पढ़ने वाले विद्यार्थी भी इतना जानते हैं "पक्षौपूर्वापरौशुक्ल कृष्णौमासस्तुतावुभौ" आप को अभी तक खबर नहीं? किसी पञ्चांग के पृष्ठ गिनकर हिसाब लगाया होगा ठीक है, अब किसी विद्वान् से बूझ लीजियेगा पहिला कृष्णपक्ष है या शुक्ल।

आगे आप ने जातकाभरण के दो श्लोक और पाठ बदल के ग्रन्थकर्त्ता की भूल दिखाने के अभिप्राय से लिखे हैं ।

भाद्रेमासेसितेपक्षे चतुर्थ्यांशनिवासरे ।
भरणीनामनक्षत्रे गृणन्तिमरणंनृणाम् ॥
आश्विनस्यसितेपक्षे द्वितीयायांगुरौदिने ।
कृत्तिकानामनक्षत्रे० ॥ इत्यादि ॥

पाठक महाशय जिस प्रकार स्वा०द० ने सत्यार्थप्रकाशादि में कई जगह पाठ बदल दिये हैं यही लीला यहां लु०ला० जी ने भी रची है ऊपर के दो श्लोकों में आ की मात्रा हजम कर गये हैं न जाने क्यों असत्य का ठेका इन लोगों ने ले लिया है । ये श्लोक इस प्रकार हैं देखिये जातकाभरण बम्बई लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, में सम्बत् १९५१ का छपा पृष्ठ ८३ ॥

भाद्रेमास्यसितेपक्षे चतुर्थ्यांशनिवासरे ।
भरणीनामनक्षत्रे गृणन्तिमरणंनृणाम् ॥

तथा दूसरे श्लोक में भी " आश्विनस्यासिते पक्षे० " इत्यादि पाठ है जिस का अर्थ असिते पक्षे कृष्णपक्ष होता है आप ने शुक्लपक्ष का अर्थ निकाला है । धन्य हो सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग यही क्या आप का चौथा नियम ? है ।

भाद्रवदी चतुर्थी को भरणी आश्विन वदी द्वितीया को कृत्तिका का होना सम्भव ही है इस में जातकाभरण बताने वाले की गणित में कुछ भी भूल नहीं, आप का प्रपंच हम ने खोल दिया है कुछ लज्जा आती है या नहीं? ।

आगे चल के स्वामी जी लिखते हैं, "सब मनुष्यों को ११ ही दिन में मरना चाहिये । वर्ष भर के ३४९ दिनों में किसी की मृत्यु न होनी चाहिये"।

धन्य २ खूब समझे वलिहारी आप की बुद्धि को पाठक महाशयो ! ज्योतिषशास्त्र के गूढ़ अभिप्राय को नमस्ते भाई क्या समझें (तथापि इस का समाधान सब पाठकों के हित के लिये लिखते हैं) इस का अभिप्राय ये नहीं है कि सभी एक राशि वाले एक ही दिन मर जावें अथवा जो स्थूल आयु राशियों की लिखी हैं उस ही अवस्था में, जैसे ८५ वर्ष की तुलाराशि वालों की आयु कही है ८५ वर्ष में तुलाराशि वालों की मृत्यु हो इस से कम ज्यादे न हो, अभिप्राय यह है ८५ वर्ष की स्थूल गराणटी तुलाराशि की हुई जिसके अरिष्टी योग जन्म पत्र में मारकेश की दशा आदि पहिले हो जाने से पहिले

मृत्यु, दीर्घायु योग होने से मारकेश की दशा पीछे आने से ८५ पीछे मृत्यु हो। जिस की राशि तथा चन्द्रमा राशिपति बलवान् हों उस की राशि का फल पूरा है दो बलवान् हों मध्यम एक बलवान् हो तो अधम फल होता है।

बलवति राशौ तदधिपतौ च, स्वबलयुतः स्याद्यदितुहिनांशुः। कथित फलानामविकलदाता, शशिवदतोन्येप्यनुपरिचिन्त्याः ॥ बृहज्जातक ॥

इस प्रकार बलाबल विचार के अन्य योग कुण्डली के देखकर जिस के राशिपति चन्द्रमा तथा राशि तीन ही पूर्ण बली हों उन का फल राशिफल ठीक होता है अन्यथा नहीं, ऐसे पूर्ण योग पड़ने से अवश्य उस ही दिन मृत्यु होती है।

स्वामी जी सवाल करते हैं (गत वैशाख में पूर्ण योग तुला राशि वालों की मृत्यु का था आप कैसे जीते रहे आप की भी तुला राशि थी)

धन्य हो सभ्यता इसी का नाम है क्या खूब सवाल किया? आप ही के विचार से सब तुला राशि वालों के मृत्यु का योग पड़ा होगा तुला राशि मेरी ही नहीं आप के भाई साहब की भी थी उन्हीं के ऊपर दया करते।

स्वामी जी से प्रार्थना है वेदप्रकाश में अपने लिखे श्लोक जातकाभरण के ज्यों के त्यों उक्त ग्रन्थ में दिखा दें तथा कृष्णपक्ष को आद्यपक्ष सिद्ध करें व्यर्थ टांग अड़ाने से क्या होगा शब्द बदलने से काम नहीं चलेगा ॥

आप का–रामदत्त ज्योतिर्विद् भीमताल नैनीताल

मधुसूदन गोस्वामी ने जो स्मार्त्तधर्म पु० में चारों सम्प्रदायों को सम्मत सूचक शब्द दिये हैं वह उनकी कपोल कल्पना है क्योंकि श्री रामानुज सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय में तो चोटी उपवीत इनका तथा कर्मों का संन्यासावस्था में भी त्याग का निषेध है, और श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में तो आश्रम कर्म को विद्योत्पादकत्व होने से यावज्जीवनानुष्ठेय कहा है, तथा गायत्री मन्त्र को वासुदेव मन्त्र और प्रत्यह उपासनीय लिखा है, इसी से यह गौड़ीया गो० मधुसूदन का लेख हम को सम्मत नहीं है।

समस्त लोकों को यह विदित कराने को कि श्री गो० मधु० ही मनुस्मृति तथा चोटी तथा गायत्री को नहीं मानते हैं, सब समझलें कि यह कैसे वेदमतानुयायी तथा ब्राह्मण हैं! आप इस पत्र को कृपया छाप देना। जिसमें सब जान लें कि केवल गौड़ीया सम्प्रदाय में ही एकाकार (वर्ण व्य-

वस्था का न होना) तथा गायत्री मनुस्मृति आदि का न मानना है, और श्री निम्बार्क रामानुज सब मानते हैं, ।

पं० पद्मनाभ शर्मा निम्बार्क मतानुयायी
पटना वासी

समाचार

गोवध से गोरक्षा

जिला उन्नाव में एक रानीपुर ग्राम है उसके जिमीदार मुसल्मीन लोग हैं संवत् १९५१ की अति वृष्टि में वहां दो तीन लावारिस (गायें) आ बसीं थीं वे बढ़ते २ आज पचास की संख्या को पूरी कर चुकीं हैं संवत् १९६२ के माघ शुक्ल १५ को ग्रामाधीश यवनों ने दौड़े में आये हुये डिप्टी कमिश्नर बहादुर साहब को दरखास्त दिया कि पचास जंगली (गायों) से हमारे मौजे की काश्तकारी का सर्व-सत्यानाश हो रहा है इस लिये सर्कार से बंदोबस्त किया जावे । साहब बहादुर ने आज्ञा दी कि तुम लोग लैसन्स से दो बन्दूक लेकर शिकार कर लो इस दुर्घटना को सुनते ही गोरक्षणीसभा के प्रबन्ध कर्त्ता भक्तिविनोद काशीराम जी वर्मा नंबरदार रूरूई ने शोक सागर में मग्न होकर उक्त साहब बहादुर को दरखास्त दी कि यदि सरकारकी आज्ञा हो तो हम इन्हें ६ महीने में बश में ले आवें और गौशाला बना के रक्षा कर लें साहब बहादुर की तीन मास में पकड़ लेने की आज्ञा पाकर आप ने बाड़ा बनवा के जिन (गायों) का पदरज दुर्लभ था उन्हें बड़े प्रयत्न से डाली देते २ वशीभूत करके सुरक्षित कर लिये अब आप गोशाला बनाने की चेष्टा में थे कि जगद्विख्यात व्याख्यान शिरोमणि महामहोपदेशक श्रीस्वामी आलाराम जी सागर संन्यासी ता० २६ मई सन् १९०६ ई० ज्येष्ठ शुक्ल ३ शनी वार को शहर कानपुर से पधारे उक्त स्वामी के (गोरक्षा) तथा सनातनहिन्दू धर्म पर उत्तमोत्तम व्याख्यान हुये सनातन हिन्दू धर्मावलम्बी लोग बड़े प्रेम से सुनते रहे उन्नाव प्रांत के सर्व सज्जन रईस लोग गोशाला की स्थिति में सहायता देने के लिये कटिबद्ध हैं आशा है कि चन्द रोज में (गोशाला) स्थापित होजायगी सहर्ष हम अपने धर्मधुरीण उपरोक्त प्रबन्धकर्त्ता जी को धन्यवाद देकर आशीर्वाद देते हैं परमेश्वर ऐसे धर्मसंबन्धी कामों के करने में आप का मनोर्थ सदा पूर्ण करे ॥

गोविन्दप्रसाद वाजपेयी ।

सनातनधर्म सभा जगरांवा को उन्नति ॥

सनातनधर्म के प्रेमियों को यह शुभ समाचार सुनकर अति प्रसन्नता होगी कि अब सनातनधर्म सभा जगरावां भगवान् कृष्णचन्द्र की कृपा से दिनोंदिन उन्नति कर रही है इस में अब बड़े २ प्रतिष्ठित पुरुष शामिल होरहे हैं इस सभा के कोषाध्यक्ष का काम श्रीमान् लाला गौरीशंकर जी ने अपने हाथ लेलिया है और श्रीमान् लाला रामरक्षपाल जी ने इस सभा के जनरल सेक्रेटरी पद को स्वीकार कर लिया है यह दोनों महाशय लखपति रईस हैं आशा है कि अब सभा इन के प्रबन्ध में अच्छी तरक्की करेगी। जब से यह महात्मा शामिल हुए हैं तभी से गौशाला का काम प्रारम्भ होगया श्रीगोपाल भगवान् से प्रार्थना हैं कि इन के प्रेम को दिनों दिन बढ़ायें ॥ शुभम्

भवदीय—छज्जूराम शर्मा मंत्री सनातनधर्म सभा
जगरावां जि० लुधियाना।

जगरावां जि० लुधियाना से हमारे एक संवाददाता लिखते हैं कि वहां पर आर्यसमाज का सालाना वार्षिकोत्सव हुआ जिसमें उन्हों ने धर्मचर्चा का भी समय रक्खा था इस बात को सुन कर सनातनधर्म सभा की तरफ से एक पत्र समाजियों को भेजा गया जिसमें लिखा था कि यदि समाजी अपना नियत किया समय सनातनधर्म सभा को देवें तो हम शास्त्रार्थ करने को तय्यार हैं। इस पत्र को लेकर सभा के जनरल सेक्रेटरी लाला रामरक्षपाल जी स्वयं गये थे पत्र देखकर समाजियों ने बहुत टालमटूल करनी आरम्भ की पर सनातनधर्म सभा के सेक्रेटरी ने उन्हीं के सब नियम मानने स्वीकर किये और कहा कि तुम जिस तरह शास्त्रार्थ करना चाहो करलो हम तय्यार हैं। तब तो समाजियों को स्वीकार करना पड़ा नियत समय पर सभा के सर्वसभासद् अपने विद्वानों सहित समाज में गये धर्मसभा की तरफ से पं० कर्मचन्द्र मालेर कोटला निवासी वादविवाद करने को खड़े हुये शास्त्रार्थ नियोग विषय पर हुआ समाजी पण्डित उत्तर तक न दे सके इधर उधर टालमटूल करते रहे पर सनातनधर्मी पण्डित ने अपने प्रश्न को न छोड़ा पं० विष्णुदत्त जी जिलेदार तथा पबलिक को समाज का पराजय मालूम होगया इस के सिवाय सनातनधर्मियों ने १४ प्रश्न लिखकर भेजे थे उस का भी जवाब आ० समाज ने अब तक न दिया ॥

रिपोर्ट सनातनधर्म सभा जिला सिवनी (छपारा) सी. पी.

सनातनधर्म सभा जिला सिवनी का वार्षिक उत्सव मिती जेठ सुदी १ सं० १९६३ ता० २४ मई सन् १९०६ ई० को बड़े समारोह वो उत्सव के साथ निर्विघ्न समाप्त हुआ देहात के वागरी वो कलार जाति के बड़े जिमीदार सभा में उपस्थित थे रपोट वर्ष भर के कार्य की अर्थात् सं० १९६२ की पढ़ कर सुनाई गई कुल हिसाब जमा खर्च का बतलाया गया, पश्चात् इस के मैंने एक व्याख्यान धर्म देशाचार वो कुलाचार पर दिया, जिस का समर्थन पं० घनराज प्रसाद सा० ने एक व्याख्यान द्वारा किये वह इन्हीं व्याख्यानों द्वारा सभाका क्या कर्त्तव्य है सत्यप्रणाली दान की क्या है, उत्तम धर्म शिक्षा कैसी होना चाहिये, सनातनधर्म की उन्नति के क्या उपाय हैं इत्यादि विषय भी प्रदर्शित किये गये पं० गोपाली महाराज ने श्रीशिव जी के मन्दिर की भूमि को बहुमूल्य पत्थरों से जटित कराये थे इस के पलटे में इन को सभा से एक मान्य पत्र दिया गया, दयानन्दियों का यहां पर खोज भी नहीं है इसी कारण इन धर्म घातकों के न होने से यह प्रान्त उपद्रव वो क्लेश रहित है पुरुष अपने सनातनधर्म से विचलित नहीं हुए हैं यही ईश्वर की विशेष कृपा है पश्चात पान प्रसाद वितरण के सभा विसर्जन हुई ॥

आप का दास—गिरजानन्द कायस्थ मन्त्री

सनातनधर्मसभा—सिवनी ॥

ता० २८ जून सन् १९०६ ईस्वी को सिंहावली ज़िला मेरठ निवासी ला० जगनलाल वैश्य के लड़के की बरात ग़ाज़ियाबाद में लाला हरदेव पटवारी के यहां गई पटवारी साहब कट्टर आर्य्य समाजी हैं इसी लिये सिकंदराबाद से दो आर्य्य समाजी पं० बुलाये उन्हों ने समाज की रीति से कुण्ड बनाया और केलों का मण्डप बनाया परन्तु बेटा वाला पक्का सनातन धर्मावलम्बी है इस वास्ते उसने रुड़की से पं० श्रीनिवास शास्त्री को बुलाया जब शास्त्री जी को यह ज्ञात हुआ कि कुण्ड बनाया है तब बेटे वाले से कहा कि यह कर्म्म बिल्कुल वेद विरुद्ध है तब आर्य्यसमाजी बहुत शोर मचाने लगे निदान वैवाहिक रात्रि इन्हीं झगड़ों में व्यतीत होने की हुई दोनों ओर पक्ष बंध गये अन्त में कुण्ड में मिट्टी भरवाई गई और केले उखेड़े गये तब सनातन धर्म के अनुसार शास्त्री जी ने विवाह कराया आर्य्यसमाजी बहुत झुंझलाये परन्त क्या हो सकता था केवल बकते ही रहे और कुछ न होम का

समाजी प० रात्रि में भाग गये–ता० २९ को पं० बाबूराम पिलखना निवासी का वेश्या नृत्य खण्डन और शास्त्री जी का कुरीति प्रचार पर अति मनोहर व्याख्यान हुआ बीच में दयानन्दियों की पोल का नमूना भी दिखाया प्रभाव उत्तम रहा–

जगदीशप्रसाद

संस्कृत प्रचारिणी सभा—रुड़की ॥

श्री सनातनधर्म सभा खुरजा का वार्षिकोत्सव मिती भाद्रपद कृष्णा २ से आरम्भ होगा और षष्ठी पर्यन्त रहेगा जिस में व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु, विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि विद्वान् पधारेंगे प्रेमियों को अवश्य कृपा कर आना चाहिये इस महीने में सभा की पाठशाला का कार्य पं० सीताराम जी ने भले प्रकार किया आपही उपाध्याय हैं धन्य है।

द० रामस्वरूप शर्मा वैद्य महामन्त्री

सनातनधर्म सभा, खुरजा ॥

श्री दुर्गा प्रसाद जी मथुरा से लिखते हैं कि यहां पर आ० समाजियों का बड़ा जोर था यह सुना जाता है कि कुछ दिनों में दो समाज होने वाली हैं दोनों भावी समाज वाले आपस में लड़ रहे यह शख्स वह हैं जो कि मेल के ऊपर धुंआ धार व्याख्यान देते हैं पर खुद आपस में लड़ने में नहीं शर्माते इन पर यह कहावत ठीक बैठती है "पर उपदेश कुशल बहुतेरे," यहां पर आर्य्य समाजियों के लड़कों ने एक क्लब खोला है जिस को हम तो "जोकिंग क्लब" कहेंगे यानी दिल्लगी का क्लब। क्योंकि ये लोग हर शनिवार को हवन करते हैं पर वेद मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण मंत्री और उपप्रधान तक को नहीं आता और लड़कों का तो कहना ही क्या है और जभी हमने उपरोक्त नाम रक्खा है इस क्लब के उप प्रधान पं० नन्दकुमार जी हैं जिन का पहिले यह हाल था कि गंगा गये गंगादास जमना गये जमनादास। अब यह आर्य्य बनते हैं और कुछ लिखने और बोलने की शक्ति हो जाने से दिल्ली के पांच सवारों में अपना नाम गिनाना चाहते हैं कभी आप विधवा विवाह का मण्डन भी करते हैं परन्तु इन्हें लाज नहीं आती है यदि शक्ति होती तो पताका की उपहार पुस्तक का उत्तर दिया होता ॥

ता० २३ जून शनिवार को मुकाम धौलाना बाज़ार तिराहे में सभा हुई जिसमें पं० मथुराप्रसाद जी का विवाह विषय पर तथा पं० कन्हैयालाल बेगमाबाद निवासी का साकार निरूपण और मूर्ति विषय पर मनोहर व्याख्यान हुआ और पं० जयदेव शर्मा उपदेशक गौड़ महासभा कुरुक्षेत्र ने मूर्ति

और सत्यार्थ प्रकाश से स्वामी जी का गुरु मूसा (चूहा) सिद्ध कर दिखाया दयानन्दी सुन कर चकित हुए। पैंठ बाजार के सबब कई गांवों के आदमी सभा में विराजमान थे॥

लि० श्रीदत्त शर्मा
कस्बाधौलाना जिला—मेरठ॥

अकबरपुर ज़ि० कानपुर से हमारे एक सम्बाद दाता लिखते हैं कि यहां पर आर्यसमाज बहुत दिनों से था पर सनातनधर्म सभा प्रायः नगर वासियों के अनुत्साह के कारण नहीं थी सन् १९०४ में कतिपय भद्र पुरुषों के पुरुषार्थ से नाममात्र सभा स्थापित हुई अब कालपी सभा के वार्षिकोत्सव में कोटा से पं० श्रवणलाल उपदेशक आये हुये थे उन्हें इस सभा ने बुलाया तथा लखना निवासी पं० कविशंकरप्रसाद जी का भी आह्वान किया गया इन्हीं दोनों महाशयों के व्याख्यानों से वार्षिकोत्सव बड़ी ही उत्तम रीति से हो गया तथा ५०) चन्दा भी ग्राम्यवासियों से होगया जिस से सम्पूर्ण कार्य यथावत् होगये अतएव सभा सहायता देने वाले सम्पूर्ण सुजनों को धन्यवाद देती है सभा की तरफ से काशी भारतधर्म महामण्डल को भी ३) भेजे गये॥

बहरायच से पं० रामसेवक पांड़े लिखते हैं कि यहां पर सनातनधर्म सभा का चतुर्थ बृहदधिवेशन ता० ३० मार्च सन् १९०६ से ३ अप्रेल सन् ०६ तक बड़ी धूमधाम से हुआ इस उत्सव में मुरादाबाद से पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा टेढ़ा से पं० नन्दकिशोर शुक्ल वाणी भूषण इत्यादि अनेक उपदेशक पधारे थे भजन मण्डली भी तिलहर और शाहजहांपुर से आई थीं उक्त उपदेशकों के प्रभावशाली व्याख्यानों से पबलिक पर बड़ा ही असर हुआ ता०१ और २ को शंका समाधान के लिये भी समय रक्खा गया था पर दोनों दिन कोई समाजी शंकासमाधानार्थ उपस्थित न हुआ हां अपनी निर्बलता सूचक १ पत्र उर्दू शब्दों से भूषित भेज दिया जिस में सिवाय कुत्सित वाक्यों के और कुछ न था पर क्या हो सकता था सूर्य पर धूलि फेंकने से अपने ही ऊपर गिरती है स्वयं उन्हीं के अनुयायी ४ दयानन्दियों ने हस्ताक्षर कर दिये कि हम मूर्त्ति पूजा मानते हैं एक कुमार धर्मसभा भी वाणी भूषण के व्याख्यानों से स्थापित होगई है श्रीमान् लाला जगन्नाथप्रसाद अग्रवालों ने अपना मन्दिर सभा होने के लिये समर्पण कर दिया है सभा की तरफ से आपको धन्यवाद दिया जाता है॥

पं० गुरुदत्त शर्मा वहरामपुर जि० गुरुदासपुर से लिखते हैं कि यहां पर सनातन धर्मी तथा आर्यसमाजी और मुसल्मानों ने मिल कर एक बड़ी सभा की जिस में लाला बुड्ढामल तथा अन्य कई एक महाशयों के स्वदेश-वस्तु प्रचार के ऊपर वहुत अच्छे व्याख्यान हुए व्याख्यानों में कहा गया कि विलायती खांड़ बैल की हड्डी तथा रुधिर से बनती है इसी से प्लेगादि रोग होते हैं उपस्थित लोगों के हृदय में अच्छा प्रभाव हुआ सब ने मिल कर प्रतिज्ञा की कि आज से कभी विलायती शक्कर न खांयगे हलवाइयों के पास जो विलायती खांड़ की मिठाई थी खरीद कर फेंक दी गई ॥

सूचना ।

एक मिडिल अंगरेज़ी पास मास्टर की, लड़का के पढ़ाने के लिये ज़रूरत है वेतन अव्वल १०) रु० माहवार मुकर्रिर होगी कुछ अरसे के वाद काम देखने पर ५) रु० और तरक्की होगी जिस को ज़रूरत हो मुझ से ख़तकितावत करें ॥

उमरावसिंह सबइन्सपेक्टर पुलिस मु०अलीगढ़ ज़िला–फतेहगढ़

प्राप्तिस्वीकार ॥

" सद्धर्म " इस नाम का मासिकपत्र संस्कृत में विक्रमीय संवत् १९६३ चैत्रमास की पौर्णमासी से ले कर प्रत्येक पौर्णमासी को निकलता है । अठपेजा डिमाई साइज २४ पेज का आकार है । वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, पुराणेतिहासतन्त्र, साहित्य, शङ्कासमाधान और सब के अन्त में हिन्दी भाषा में परामर्श इन आठ विषयों पर उत्तमोत्तमविचार इस पत्र में क्रमशः छपते हैं । श्री पं० वामनाचार्य जी, श्रीपं० अमृतराम शर्मा, श्रीपं० शिवप्रकाश द्विवेदी, श्रीपं० लक्ष्मणाचार्य और भगवताचार्य जी, श्रीपं० भट्ट पुरुषोत्तमशास्त्री जी, श्रीपं० भट्ट नन्दकिशोर शास्त्री जी, श्रीपं० गयादत्त चतुर्वेदी, श्रीपं० गोस्वामिलक्ष्मणाचार्य जी, ये आठ विद्वान् महाशय एक २ विषय के क्रमशः सम्पादक हैं । प्रत्येक महीनों के व्रतों का निर्णय भी इस पत्र में पहिले से ही छप जाता है । इस पत्र का वार्षिकमूल्य भी डाकव्यय सहित १) (कम) है । हम इस पत्र के उक्त सब सम्पादक विद्वानों को धन्यवाद देते हैं कि जो पवित्र वाणी संस्कृत का प्रचार और तदाश्रित धर्मोन्नति के विचार से ऐसा परिश्रम करतें हैं । संस्कृत भी सरल और उत्तम लिखा जाता है । प्रयोजन यह कि लेख, छपाई, कागज अक्षर विषय, भाषा और आकार आदि सभी अंश इस के अच्छे होने से लेने योग्य हैं । जिन लोगों को उक्तपत्र मंगाना होवे–

सम्पादक-पं० बासनाचार्य सद्धर्मकार्यालय प्रयाग घाट श्रीवेणीमाधव मन्दिर-मथुरा से पत्रादि भेज कर मगावें ॥

दयानन्दोक्त विरोधदर्पण ।

यह पुस्तक श्रीमान् आलारामसागर संन्यासीजी ने रचा और सिन्ध हैदराबादी दीवान शीतलदास जी वेदान्ती ने छपवाया है। सनातनधर्मी उपदेशक, महात्मा और विद्यार्थियों को यह पुस्तक विना मूल्य के ही मिलता है। और यदि आर्यसमाज का सेक्रेटरी वा प्रेसीडंट आदि कोई इस पु० का नीति और विद्वत्ता के साथ उत्तर देने के लिये मांगे तो उस के हस्ताक्षर कराकर एक कापी दी जाती है। और जो कोई महाशय इस पुस्तक को मगाना चाहें उन को श्रीमान् आलारामसागर जी से ही मिल सकता है और उक्तसागर जी से पत्र व्यवहार करने का सामान्य पता यह है कि-

पं० अनन्तराम शर्म्मा मुहल्ला मुट्ठीगञ्ज-
गोकुलदास तेजपाल की धर्मशाला=प्रयाग

गुरुनानकसिद्धान्तदर्पण ।

इस को भी श्रीमान् आलारामसागरजी ने रचा और स्वामी पूरणानन्द ब्रह्मचारी राजवैद्य काशीनिवासी जी ने जिन का हेडक्काटर बम्बई महालक्ष्मी के समीप है छप वाया है। सनातनहिन्दुधर्मावलम्बी उपदेशक, महात्मा और विद्यार्थियों को विना मूल्य लिये दिया जाता है। तत्त्वखालसासिंह सभा के सेक्रेटरी वा प्रेसीडंट आदि कोई महाशय नीति और विद्वत्ता से उत्तर देने के लिये मांगे तो उस के हस्ताक्षर कराकर एक कापी दी जाती है। प्रयोजन यह है कि सिंहसभावाले सिक्ख लोग गुरुनानक जी के सिद्धान्त को हिन्दुधर्म से विपरीत मानते हुए सनातनधर्म की प्रथाओं को छोड़ते जाते हैं। इस कारण यह पुस्तक उक्तसागर जी ने बनाया और गुरुनानक जी के बनाये ग्रन्थसाहब के प्रमाणों से रामकृष्ण जी के अवतार, मूर्त्तिपूजा, गङ्गादि तीर्थ, वेदप्रशंसा, मृतकश्राद्ध, विधवाविवाहखण्डन, मांसमद्यखण्डन आदि सनातनधर्मानुकूल विषयों को सिद्ध किया है। यह पुस्तक भी श्रीमान् आलाराम सागर जी के ही पास से मिल सकता है ॥

वेदधर्मव्याख्यानम् ।

श्रीमान् मधुसूदनशर्माशास्त्री मैथिल ने यूरूपदेश के लण्डन नगर में वेदधर्मविषय पर मूलतत्त्वोपदेशरूप प्रथम वक्तृता जो दी थी वह ज्यों की

त्यों संस्कृत में प्रमाणों सहित जयपुर में छपी है। ४० पृष्ठ का पुस्तक है। इस में हिन्दी भाषा बिलकुल नहीं है। श्रीमान् महाराजा साहब जयपुराधीश जी की विलायत यात्रा के समय यह "वेद-धर्म-व्याख्यान" लण्डन में हुआ था। संस्कृतज्ञ विद्वानों को यह व्याख्यान देखने योग्य है। मूल्य ।) है और मिलने का पता- संस्कृतरत्नाकर कार्यालय—जयपुर

हम श्रीमान् महाराजा जयपुराधीश जी को सहस्रों धन्यवाद देते हैं कि जिन महाराजा ने विलायत यात्रा में हिन्दुधर्म की रक्षा का ऐसा अद्भुत अपूर्व नमूना भारतवासियों को दिखा दिया कि जैसा आज तक किसी ने भी नहीं कर पाया था। जिस का असली मतलब यह था कि भारतवासी राजा रईस आदि महाशयो! प्रयोजनवश विलायत यात्रा भले ही करो परन्तु अपने धर्म को मत छोड़ो। ईश्वर की सृष्टि के नियमों को देखो वर्षा ऋतु का धर्म यथोचित वृष्टि होना है उस अपने धर्म को यदि वर्षा ऋतु कभी थोड़ा भी छोड़ देता है तो दुर्भिक्ष होने से हम मनुष्य पश्वादि प्राणियों का जीवन रहना ही कठिन पड़ता है। यदि वायु अपने धर्म को छोड़ दे तो हम श्वास ही न ले सकें यदि अग्नि अपने धर्म को छोड़ दे तो सर्वत्र अन्धकार ही हो जाय। अंगरेज लोगों ने भारतवर्षादि अनेक देशों में जा २ कर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा। जब आसुरी संप्रदाय के लोग अपने २ वेदविरुद्ध अनिष्ट परिणाम जनक धर्मों को भी नहीं छोड़ते तब वेदानुयायी दैवी सम्प्रदाय के लोग अपने वेदानुगत धर्म को क्यों छोड़ें?। महाराजा जयपुर की विलायत यात्रा का उक्त अभिप्राय है। जिन लोगों के पास महाराजा के तुल्य विशेष धन नहीं वे लोग भी यदि चाहें तो अपने धर्म की बहुत कुछ रक्षा रख सकते हैं। महाराजा जयपुर ने अपने यहां संस्कृत विद्या का अच्छा आदर किया है। इसीलिये वहां अच्छे २ धुरन्धर पण्डितों को आश्रय मिला है, संस्कृत का अच्छा कालिज है जिस में वैद्यक आदि परीक्षा पास तक पढ़ाई होती है, बड़ी भारी लायब्रेरी (संस्कृतपुस्तकालय) है। संस्कृतरत्नाकर मासिकपत्र निकलता है। ऐसे अंगरेजी समय में संस्कृत का इतना प्रचार भी कम नहीं है। यह सब महाराजा जयपुर के पुण्य प्रताप का चिन्ह है। उत्तम हो कि श्रीमान् महाराजा साहब अपनी राजधानी में षडङ्ग सहित वेद पढ़ाने तथा मनु याज्ञवल्क्यादि धर्मशास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय राजपूतों को सनातनधर्मनीति पढ़ाने के भी क्लास खुलवा दें तो राजपुताना में वेदस्मृति के धर्मोंद्वारा अच्छा २ ज्ञान प्रकाश बढ़ता जावे॥

आ०स० का मूल्यप्राप्ति स्वीकार मार्च ०६ से १७ मई तक ॥

११४३ बा०मोहनलालओंकारदेवास ३।)
१२४२ ज्यो० माधवलाल जी मथुरा ३)
१२४३ पं० दामोदर जी मथुरा ३)
१४१८ बा० शिवरत्न सुकुल गौरा २।)
१३१५ला०नाथूरामरामकृष्णफर्रुख़ाबाद २।)
१३५६ ला०रामनारायणभोजराज " २।)
१३६० ला० मंसाराम जयनारायण " २।)
१३६१ ला०वनवारीलालमुरलीधर" २।)
१३६२ ला०चुन्नीलालजयनारायण" २।)
१३६७ ला०रामाधीनचन्द्रशेखर " २।)
१३६९ ला० दुर्गाप्रसाद रस्तोगी " २।)
१३१६ ला० कुंजविहारीलाल " २।)
१३११ श्रीगरुड़ध्वज जी मथुरा २।)
१३६४ पं०चेतरामहरगोविन्दफर्रुखाबाद २।)
३२९ पं० मोहनलाल शर्मा खीरी १≡)
१३१३ ला० रामदयाल फर्रुखाबाद २।)
१३५९ला०शालिगरामलक्ष्मीनारायण" २।)
१३४४ पं० रामाधार भगवन्तनगर २।)
३१२हनुमानप्रसादजीकटनीमुड़वारा २)
१३१९ पं० लक्ष्मणदत्त तोछीगढ़ २।)
३१४ बा० नागेश्वरीचरण रांचो २।)
१३११ पं० रघुनाथप्रसाद नेकपुर २।)
१२३२ पं० बुद्धिसागर मिश्र बढ़नी ३।)
३४६ पं० बेंचेलाल जी घुरसेना २॥)
११८२ बा० नन्हेंमिश्र जी करेली २।)
१३९० पं० कर्मचन्द जी रईस मीरपुर २।)
५६२ पं० योगी शिवनाथ लाहौर २।)
५३१ बा० देवीदयाल जी अजमेर ।॥≡)
१३९१ राजाराम आत्माराम खंडवा २।)
१३६२ श्रीनारायणदास फर्रुखाबाद २।)

५०२ पं० गणेशदत्त शर्मा बड़ी भादी २।)
१३८८ पं० कृष्णानन्द जी फ़र्रुख़ाबाद २।)
९०९ श्रीदत्त शर्मा धौलाना २।)
१३८१ पं० मदनेश्वर शर्मा
डेराइस्माईलख़ां २।)
१३८७ सुदर्शनाचार्य रईस बुटिला २।)
१३८४ बा० रामभरोस जी छत्तरपुर १)
१३८२ पं० बालचन्द जी लाटगांव १)
४१४ पं० गोविन्दराम शिकारपुर १।-)
१९४ पं० केदारदत्त पन्त अलमोड़ा २।)
१२८ बा० ओंकारदास जी सिवनी २।)
१३९६ बा० नरसिंहदास नौशहरा २।)
४ पं० युगलकिशोर जी भ्योंगांव २।)
१३९६ पं० द्वारिकाप्रसाद बलिया २।)
१३९४ सुन्दरलाल वीरवल ठठ्ठा २।)
१३९७ मन्त्री स० ध० सभा बाराबंकी २।)
१३९५ पं० ताराचन्द जी ध० ठठ्ठा २।)
२१६ बा० महाबीरप्रसाद गोरखपुर २।)
११५१ पं० पन्नालाल वरुआ सागर ॥≡)
१३९८ मन्त्री स० ध० सभा खुर्जा २)
१३९९ मन्त्री स० ध० सभा जहांगी० २।)
२९१ पं० अमृतराम जी मथुरा २।)
१४०० बा० गिरबरधारीलाल महना २।)
६६४ पं० बासुदेव शर्मा सक्खर ३।)
१२९९ पं० जानकीप्रसाद नवादा २।)
१५२ पं० तुलारामं शास्त्री अंबाला १)
१४०१ बा० अशर्फीलाल नरवल २।)
१४०२ बा० राधाकृष्ण शाहपुर २।)
१४०३ बा० गंगाप्रसाद जी इन्दौर २।)

REGISTERED NO. A242.
ब्रा०स० सम्बन्धी पत्रादि पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा के पते से भेजिये

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व ॥

THE BRAHMAN SARVASWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

भाग ४] मासिकपत्र मासाङ्क [९

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म-यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६३ वि० जनवरी से सितम्बर सन् १९०६ ई०

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २) है

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१-जो विज्ञापन ब्रा०स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्य मिथ्या होने के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे। ग्राहक शोच समझ के व्यवहार करें।

२-ब्रा स० में एक वार कोई विज्ञापन एक१ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३-एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४-जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्र से पूछ कर ब्रा० स० का क्रोड़पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में, और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१-यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२-इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३-अगला अंक पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अंक विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर दुवारा अंक =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४-राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५-जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा ।)का वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उन को नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

६-मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

७-कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे ॥

८-जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उनको यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा।

|01

श्रीगणेशायनमः ॥

❀ ब्राह्मणसर्वस्व ❀

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ९

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

ओं प्राणापानौ व्रीहियवा वनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवेहप्राणआहितोऽपानोव्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

अ० व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वेति श्रुत्यन्तरेषु बहुशः प्रतिपादितमस्ति । तौ च व्रीहियवौ प्राणापानशक्तिप्रधानौ क्रमेण बोध्यौ । आधिदैविकपक्षेऽनड्वानादित्यः प्राण उच्यते । तथा च " आदित्योहवै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः " इति प्रश्नोपनिषद्वि स्पष्टमुच्यते । प्राणशक्तिरूपेण सर्वत्र व्याप्तआदित्योऽनः संसारचक्रं वहति तस्मादनड्वान् । तथा चोक्तमनड्वान्दाधारपृथिवीमुतद्यामिति । आधिभौतिक पक्षे च वृषभोऽपि प्राणशक्तेः प्राबल्यादनः शकटादिपदवाच्यं भारं वहतीत्यनड्वान् । यवे यवौषधौ प्राणआहितः प्राणशक्तिप्रधानो यवः । यवसाध्ययज्ञेन दिव्या मानुषी च प्राण शक्तिर्वर्धते। यवभक्षणेन मनुष्यादिषु प्राणः प्रबलो जायते ।

व्रीहिष्वपानशक्तेः प्राबल्यम् । पुंस्त्वप्रधानः प्राणो यवश्च । स्त्रीशक्तिप्रधानोऽपानो व्रीहिश्च तस्मादपानो व्रीहिः । तस्मै व्रीहियवादिष्वपि व्याप्ताय प्राणापानादिनामरूपाय प्राणेश्वराय नमइति पूर्वेणान्वयः ॥

भावार्थः-(व्रीहियवौ प्राणापानौ) प्राण और अपान क्रम से व्रीहि और जौ इसलिये कहेगये हैं कि उन में क्रम से प्राण तथा अपान शक्ति की प्रबलता है । आधिदैविक शक्तियों का विचार करना वेद का मुख्य अभीष्ट है । और आधिभौतिक की अपेक्षा आधिदैविक प्रधान है । सूर्यरूप प्राण और चन्द्रमारूप अपान ने ही आधिभौतिक औषधियों में व्रीहि यवरूप अवतार लिये हैं । इसी कारण अनेक श्रुतियों में व्रीहि और यव से ही विशेष कर यज्ञ करने लिखे हैं । पुंस्त्व शक्तिप्रधान प्राण और स्त्रीशक्ति प्रधान अपान है । चन्द्रमा दिव्यांश में स्त्रीशक्ति प्रधान है इसीकारण कोमलतादि में स्त्री के साथ उस का घनिष्ठ सम्बन्ध है । (अनड्वान् प्राण उच्यते) प्राण शक्तिरूप से सब में व्याप्त आदित्य देव संसार चक्र को ठीक नियम पर चलाते हैं इस से आदित्य का नाम अनड्वान् है । सो (अनड्वान्दाधार०) इस मन्त्रान्तर में वैसा ही दिखाया है । और आधिभौतिक गौणपक्ष में भी गौ आदि की अपेक्षा बैलों में प्राणशक्ति नाम बल की अधिकता होने से ही अनः शकट नाम गाढ़ी आदि के भार को पहुंचाते हैं इस से बैलों को भी अनड्वान् कहते हैं (यवेह प्राण आहितः) यव नामक ओषधियों में प्रबलता से प्राणशक्ति स्थापित की गयी है । यव से होने वाले यज्ञों से दिव्य तथा मानुषी प्राणशक्ति प्रबल तथा हृष्टपुष्ट होती और बढ़तीहै । तथा जौ के खाने से मनुष्यादि प्राणियों में प्राणनाम बल बढ़ता है । (अपानो व्रीहिरुच्यते) व्रीहि नाम धान चावल में अपानशक्ति की प्रबलता होती है । इसी कारण विशेष कर चावल खाने वाले बंगाली आदि लोग प्राणसम्बन्धी पुरुषशक्तिरूप शारीरिक बल में कम होते हैं । प्राण और जौ पुरुषशक्तिप्रधान हैं । तथा अपान और व्रीहि स्त्रीशक्ति प्रधान हैं । इसी से अपान को व्रीहि कहा है । उस व्रीहि यवादि में व्याप्त प्राणापानादि रूप प्राणेश्वर को नमस्कार प्राप्त हो यह पहिले मन्त्रों से सम्बन्ध जानो ॥

ब्रा० स० अं० ८ पृ० ३५२ से आगे स्मार्त्तधर्ममीमांसा ॥

गोस्वामी के लिखे दो प्रमाणों में भस्म को निकृष्ट ठहराने के लिये पाप्मा और पुरीष दो शब्द उन्हों ने लिखे हैं। और पाप्मा नाम भस्म का इसी लिये बताया है कि वह पुरीष नाम मल है ऐसा श्रुति का प्रमाण गोस्वामी ने दिखाया और यह भी कहा कि भस्म को मल समझते हुए वैष्णव लोग भस्म का परित्याग कर गोपी चन्दनादि को धारण करते हैं। अब हम अपने गोस्वामी से पूछते हैं कि क्या वास्तव में वैष्णव लोग भस्म को मल वा मल के तुल्य अपवित्र समझते हैं ?। यदि गोस्वामी का विचार सत्य है तो भोजन पकाते समय ईंधन कण्डा जलने के साथ ही इन लोगों के चौका चूल्हे में जो भस्म होता जाता है जिस के साथ रोटी भी अवश्य छू जाती हैं तब मल वा मल के समान अपवित्र भस्म से गोस्वामी आदि वैष्णवों का चौका तथा रोटी अशुद्ध क्यों नहीं हुई ?। गोस्वामी के लेखानुसार भस्म को मल जान कर मस्तक पर धारण करना तो वैष्णव बुरा समझते हैं परन्तु भस्म लगी हुई रोटी मुख के भीतर ले जाते हुए भस्म को मल क्यों नहीं समझते ?। यदि वैष्णव लोग भगवान् के पूजन में धूप देते हैं तब भी उस अङ्गार के साथ भस्म अवश्य रहता है क्या वहां का भस्म भी मल है ?। हमारा अभिप्राय तो यह है कि गोस्वामी के लेखानुसार यदि वास्तव में भस्म को मल समझ कर मस्तक पर लगाना बुरा समझते हैं तो उन को अग्नि से कुछ भी काम नहीं लेना चाहिये क्योंकि जहां अग्नि होगा वहां भस्म भी अवश्य रहेगा। सर्वसाधारण वैष्णव महाशयों से निवेदन है कि वे लोग अपने पर हमारा आक्षेप न समझें क्योंकि म० गोस्वामी जी वैष्णवजनों के ठेकेदार बने थे इसलिये हमने वैसा लिखा है। वास्तव में सत्य बात तो यह है कि वैष्णव लोग क्या किन्तु पृथिवी भर में कोई नास्तिक वा म्लेच्छादि मनुष्य भी भस्म को मल वा मल के तुल्य अशुद्ध नहीं समझता है। इसीलिये भोजन पकाते समय रोटी में भस्म लग जाने पर भी रोटी को कोई अशुद्ध नहीं मानता। इस से यह सिद्ध हुआ कि वैष्णव लोगों ने भस्म को अशुद्ध समझ कर मस्तक पर लगाना नहीं छोड़ा है किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय का विधान ही नहीं है। इस से मधुसूदन गोस्वामी का लिखना पक्षपात ग्रस्त होने से सर्वथा मिथ्या है।

श्रुति में भस्म को बुरा वा मल के तुल्य निन्दित नहीं कहा किन्तु समझ

का भेद है। लौकिक मनुष्य वेही हैं जिन की समझ संकुचित तथा एकदेशी है। इसीलिये ऐसे लोग वेद का मर्म न जानते हुए वेद से विमुख रहते हैं। वेद का सिद्धान्त तत्त्वज्ञान परक है। वेद के अक्षर २ में सर्वदेशी असंकुचित विस्तृत तत्त्वज्ञान कूट २ के भरा हुआ है इसी कारण मनुजी ने वेद की प्रशंसा में कहा है कि—अ० १२। १०२।

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रयत्राश्रमेवसन्।
इहैवलोकेतिष्ठन्स ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ १ ॥

अर्थ—वेदशास्त्र के तत्त्व को जानने वाला किसी भी आश्रम में बसता हुआ मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

वेद का सिद्धान्त जानने वाले विद्वान् लोग जानते और मानते हैं कि अग्निहोत्र में मुख्य हविष्य दूध है। दूध से अग्निहोत्र करना लिखा है। गौ के दूध को सनातन धर्म के सभी सम्प्रदाय वाले लोग उत्तम तथा पवित्र वस्तु समझते हैं और इसी कारण अग्निहोत्रादि यज्ञ में तथा दर्शेष्टि आदि में सान्नाय्य हविष् बनाने के लिये गौ के ही दूध का विधान है। अवैदिक लोग भी गौ के दूध को अच्छा समझते हैं तब हमारे गोस्वामी भी अवश्य ही गो दुग्ध को पवित्र वस्तु निःसन्देह मानते होंगे। पाठकगण! अब देखिये गो दुग्ध के लिये श्रुति में क्या लिखा है—

तामु हाग्निरभिदध्यौ। मिथुन्यनयास्या मिति ताꣳ सम्बभूव तस्याꣳ रेतः प्रासिञ्चत्तत्पयोऽभवत्तस्मादेतदामायां गवि सत्याꣳ शृतमग्नेर्हि रेतस्तस्माद्यदि कृष्णायां यदि रोहिण्याꣳ शुक्लमेव भवत्यग्निसंकाशमग्नेर्हि रेतस्तस्मात्प्रथमं दुग्धमुष्णं भवत्यग्नेर्हि रेतः ॥ १५ ॥ शतपथब्रा० कां० २। अ० २ ब्रा० ४।

भावार्थः—अग्नि देवता ने उस गौ का अभिध्यान किया कि इस गौ के साथ मैथुन संयोग करूं, ऐसे विचार से गौ के साथ संयोग किया और उस गौ में अपना वीर्य सेचन किया वही अग्नि का वीर्य गौ में दूधरूप हुआ तिस से यह गौ के कच्चे शरीर में ब्याने वर्दाने से पहिले हि अग्नि का वीर्य पकता है। काली वा लाल गौ का दूध भी अग्नि का वीर्य होने से सफेद ही होता है क्यों कि अग्नि का भी शुक्ल वर्ण है इस से उस का वीर्य दूध भी शुक्ल

ही होता है किन्तु काली वा लाल गौ का काला वा लाल दूध नहीं होता। और पहिले दुहते समय दूध गर्म भी होता है क्योंकि अग्नि का वीर्य है इसीलिये गर्म निकलता है कि अग्नि में गर्मी है ॥

अब शोचिये कि हमारे गोस्वामी का ध्यान मनुष्य के मल की ओर प्रथम गया होगा उसी के तुल्य अग्निदेवता के भक्षण किये समिधारूप अन्न का मल जो भस्म उस को निकृष्ट समझने लगे। ऐसी ही समझ गोस्वामी की है तो गौ आदि के दूध को भी क्या मनुष्य के वीर्य के तुल्य घृणित समझेंगे?। और गौ आदि के गोबर से जो २ स्थान लीपे जाते हैं। वे सभी हिन्दु धर्म में पवित्र माने जाते हैं। सो यह गौ का गोबर भी गौ का मल ही है। क्या वैष्णव गोस्वामी गोबर को भी मनुष्य के मल के तुल्य अपवित्र समझते हैं?। यदि ऐसा है तो कण्डा भी नहीं जलाने चाहिये। अन्न भी ओषधियों का बीज नाम सार ऐसा ही है कि जैसा मनुष्य के शरीर का सार वीर्य होता है। तुलसी की मञ्जरी भी तुलसी वृक्ष का वीर्य वा बीज है जिनको हम अत्यन्त पवित्र मानते हैं। सुवर्ण चांदी लोहा तांवा पीतल आदि सब धातुओं में मल निकलता और होता है जो अग्नि में धर कर धौंकनी से धौंकने पर निकलता है। इसीलिये मनुजी ने मल शब्द का ही प्रयोग वहां किया है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः।

यहां भी धातुओं के असार भाग का नाम मल है। गौ का मल नाम गोबर पञ्चगव्यों के भक्षण में भी लिया गया है उस को भी कदाचित् हमारे गोस्वामी स्मार्त्तों का अभिमत होने से न मानते हों। परन्तु आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र को मानेंगे तो वहां अनेक पशु पक्षी तथा वृक्ष वनस्पति ओषध्यादि के मल भाग भक्षणादि कामों में नियुक्त किये हैं जिन सब से कोई भी नकार नहीं कर सकता। कोई विचारशील पुरुष ध्यान दे कर देखे शोचेगा तो यह निश्चय हो जायगा कि पुरीष वा मल शब्द का सामान्य अर्थ यही है कि जो वस्तु जिस का असार भाग है वही उस का मल है। और सभी कार्य वस्तु अपने २ कारण की अपेक्षा असार रूप हैं। तब इस के अनुसार सभी वस्तु किसी न किसी अपने २ कारण के मल ठहरेंगे। सुश्रुत शारीर स्थान अ० ३ में—

तद्यथा चूतफलेऽपरिपक्के केशरमांसास्थिमज्जानो न पृथग्दृश्यन्ते कालप्रकर्षात्तान्येव तरुणेनोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात्तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति ॥

भाषार्थः–जैसे कच्चे छोटे आम के फल में केशर नाम नसें वा रेसा, मांस [गूदा] अस्थि–हड्डी नाम गुठली और मज्जा नाम गुठली के भीतर की गिरी ये सब पृथक् २ नहीं दीखते परन्तु काल बीतने पर आम के बड़े फल में वेही सब पृथक् २ दीखते हैं। क्योंकि उन सूक्ष्म केशरादिकों को काल प्रकट करदेता है। वैसे ही एक दो महिने के मांस पिण्डरूप गर्भ में हड्डी मांसादि पृथक् २ प्रतीत नहीं होते पीछे काल बीतने पर गर्भ में हाथ पांव आदि अङ्ग तथा हड्डी मांसादि सब पृथक् २ दीखने लगते हैं। पाठक महाशयो ! आयुर्वेद सुश्रुत ग्रन्थ के कर्त्ता धन्वन्तरि जी हैं जिन को श्रीमद्भागवतादि के अनुसार भगवान् का अवतार हमारे गोस्वामी को भी मानने पड़ेगा। और भगवान् के एक प्रतिष्ठित अवतार ने आम के गूदा को मांस तथा गुठली को हड्डी कहा तब क्या मधुसूदन गोस्वामी ने अथवा उन के अनुगामी वैष्णवों ने मनुष्य के हड्डी मांस के तुल्य आम के गूदादि को घृणित समझ कर छोड़ दिया ? क्या वैष्णव लोग आम के कच्चे पक्के फल नहीं खाते ? यदि खाते हैं तो भस्म कासा विचार यहां क्यों नहीं किया ?। वेद के सिद्धान्तानुसार, वृक्षादि तथा फलादि स्थावरों में भी सब से ऊपरी भाग छाल वा वक्कल कहाने वाला अंश त्वचा है और इसी कारण मनुस्मृति में ब्रह्मचारियों के दण्डों का (सत्वचः) विशेषण दिया है कि वे दण्ड त्वचा नाम वक्कल के सहित होने चाहिये। उस त्वचा के भीतर गूदा मांस कहाता है। पर यह बात हमें भी स्वीकार है कि मनुष्यादि अनेक प्राणियों का मांस तथा मलादि भाग घृणित त्याज्य तथा स्पर्श करने योग्य नहीं है। परन्तु गौ आदि अनेक जीवों का मल मूत्रादि तथा फलों का मांस नाम गूदा शुद्ध और पवित्र तथा ग्रहण करने योग्य अवश्य है। अर्थात् वेद के सिद्धान्त से त्वचा, मांस, हड्डी,, मज्जा, मल, तथा पुरीषादि शब्द सब चराचर सृष्टि में व्यापकार्थ बोधक हैं। उसी व्यापकार्थ वा यौगिकार्थ के अभिप्राय से वे २ शब्द मनुष्यशरीर के भी उन २ मांस हड्डी मल आदि अंशों के वाचक हो जाते हैं। इसी कारण इन मल मांस आदि शब्दों का अर्थ मनुष्यादि खास २ व्य